पुस्तक :—
पावस-प्रवचन—(प्रथम पुष्प)

प्रकाशक :
प्रवचन प्रकाशन समिति
लाल भवन, चौडा रास्ता,
जयपुर—३

मूल्य : साधारण · २.५०
पक्की जिल्द · प्लास्टिक कवर : ३.५०

द्रक :
जय साहित्य संगम, आगरा
लिए श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस
...की मडी, आगरा-२

हार्दिक अभिनन्दन !

अनन्त आकाश से विशाल,
सागर से गम्भीर,
जाह्नवी से पवित्र,
अरावली से अचल—
परम आदरणीय जैन आचार्य श्री १००८ श्री
नानालाल जी म० साहब की सेवा में सादर

वन्दन ! अभिनन्दन !

श्री वर्द्धमान श्वे० जैन स्थानकवासी श्रावक संघ

जयपुर (राजस्थान)

अनुक्रमणिका

श्रद्धा के दो शब्द

मानव जीवन के विकास सम्बन्धी इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो यह स्पष्ट होगा कि मानव निरन्तर व्यक्ति एव समूह के जीवन की विषमताओ से सघर्ष करता आया है एव समता की साधना मे निरत रहा है। इस सघर्ष को अब तक जितनी सफलता मिली है इसके प्रकाश मे कई व्यक्तित्त्व भी आदर्श एव समादरणीय बनते रहे है। विषमताओं से सघर्ष का उद्देश्य रहा है अधिकाधिक सम-वातावरण एव सम-प्रगति मार्ग का निर्माण। विषमता से सन्ताप जन्म लेता है और यही सन्ताप आर्तध्यान एव रौद्रध्यान की मलिन धाराओं मे आत्मा को ढकेलता हुआ उसे अधोगामी बनाता है। इसलिए समता की ओर अग्रसर होने की चेष्टा जीवन को 'कु' से 'सु' की ओर गतिशील बनाने की चेष्टा कहलायेगी।

समता मानव जीवन की अमृतमयी भावना है, क्योंकि यही भावना जब कार्य एव आचरण के रूप मे उभरती है तो व्यक्ति के जीवन मे उदात्तता, सहनशीलता एव सत्प्रेरणा जागृत होती है। व्यक्ति की ऐसी जीवनधारा जब सम्यक्त्व की श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होती है तो वह निश्चय ही सारे समाज की विचार एव आचार की धाराओ को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहती। पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म सा के प्रस्तुत सकलन मे आबद्ध प्रवचन इसी प्रकाशमयी दिशा की ओर मानव जीवन को अनुप्रेरित करते है।

एक साधक और आचार्य श्री जैसे प्रबुद्ध एव कर्मठ साधक जब अपने ज्ञानानुभव के आधार पर प्रवचन-प्रवाह से जो मार्ग दर्शन देते हैं, वह अतर-भाव की दृष्टि से एक उन्नायक वैशिष्ट्य लिए हुए होता है। उसे हृदयगम करना और उसमे अपने आचरण को ढाल देना एक सच्चे भक्त का काम होता है। समता-दर्शन पर आधारित ये प्रवचन ससार एवं उसमे साधारण रूप से चल रहे जीवन की कुटिल विषमताओं को गहरी दृष्टि से समझाकर उन्हें दूर करते हुए समतामय जीवन निर्माण की एक नई दिशा देते हैं। पाठक यदि इस सकलन को आत्म-जागृति के साथ एव अनुभूतिपूर्वक पढ़ेंगे

तो अवश्य ही उन्हे अपने समग्र जीवन को उत्कृष्ट, भावना के प्रवाह मे परिवर्तित करने की अनूठी प्रेरणा प्राप्त होगी।

वचन प्रवचन तभी बनते हैं जब वे प्रबुद्ध जनो की शास्त्र सम्मत विचारणा से उभर कर उनकी अपनी मौलिक निष्ठा को छूते हुए निकलते हैं। यही कारण है कि प्रवचन भावनाशील श्रोता अथवा पाठक के हृदय को सीधे तौर पर सवेदित करते हैं। इसके साथ ही यदि उसकी भावना ने प्रवचन के प्रवाह मे समग्र रूप से अवगाहन किया तो वह श्रोता या पाठक कर्मठ बनकर स्वय एव समूह दोनो के जीवन मे आदर्श उत्थान की प्रेरणा फूँकता है। प्रस्तुत सकलन के प्रवचन उत्थान की इसी दिशा को प्रकाशित करते है।

उपदेष्टा जब उपदेश देते है तो जिस भाव, भापा एव शैली का प्रयोग करते हैं—उसका अभिप्राय यही होता है कि वे श्रोता के हृदय को स्पन्दित करें। उपदेष्टा के प्रत्यक्ष दर्शन एव श्रवण का जो सीधा सुप्रभाव होता है उसे उस प्रवचन की सम्पादित लिपिबद्धता मे बनाए रखना सरल नही होता, फिर भी प्रयास उसकी श्रेष्ठता मौलिकता के निर्वाह की तरफ ही होनाचाहिए। इस संकलन को व्यवस्थित रूप देने मे श्री शान्तिमुनि जी ने कठिन श्रम किया है वह इस दृष्टि से सार्थक रहा है तथा यह संकलन पाठको के लिए सुबोध, पठनीय एवं प्रेरणादायक बन पडा है।

मुझे विश्वास है कि समतादर्शन की गहराइयो को समझने एव उनमे अपनी अनुभूति को क्रियाशील दृष्टि से जागृत करने मे इस सकलन से पाठक अवश्य उद्बोधित होगे।

—शान्ति चन्द्र मेहता

एम ए. एल-एल. बी. एडवोकेट

प्रधान सम्पादक ललकार साप्ताहिक

एव अध्यक्ष अभिभापक सघ चित्तौडगढ राज०

जयपुर

दि. २६-९-१९७२

प्रकाशकीय

श्रद्धेय जैनाचार्य श्री नानालाल जी म सा. श्रमण परम्परा के एक उन्नत साधक तो हैं ही, किन्तु जैन समाज के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र भी है। सासारिक वासनाओ के पक से जिनके चरण प्रारम्भ से ही तनिक भी मलिन नही हुए है तथा जिन्होने अपने जीवन का श्री गणेश ही आत्मिक साधना से किया है, ऐसे इन आचार्य श्री की प्रतिभा एव इनका प्रभाव अनुपम है। आचार्य श्री बाल ब्रह्मचारी हैं एव इन्होंने अपने दीर्घ दीक्षा काल मे महान् धर्म-यश का अर्जन किया है। समूचे साधु समाज के लिये आप एक अतुलनीय आदर्श हैं। वीतराग वाणी के आप प्रखर प्रवक्ता हैं तथा इनका एक-एक वचन आत्म ज्ञान की दृष्टि से 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' के लक्ष्य से युक्त होता है। ऐसे महापुरुष का चातुर्मास जयपुर में सम्भव हो सका यह हम सबके लिये सौभाग्य की बात है।

आचार्य श्री के इन्हीं विचारपूर्ण प्रवचनो के व्यापक प्रसार की दृष्टि से इसी हेतु निर्मित प्रवचन प्रकाशन समिति ने इनके क्रमबद्ध प्रकाशन की योजना बनाई और उसी के कार्य रूप मे यह प्रथम सकलन प्रस्तुत है। इस शृ खला मे 'पावस प्रवचन' के शीर्षक से ही सात सकलन और प्रकाशित किये जायेंगे जिनमे चातुर्मास के समस्त प्रवचनो का सम्पादित रूप समुपस्थित हो जायगा। इस रूप मे जयपुर चातुर्मास की यह सुखद स्मृति भी रहेगी।

सूक्ष्म विवेक आचार्य श्री के जीवन की प्रमुख विशेषता है तथा उनका प्रत्येक प्रवचन साधु मर्यादा एव शास्त्राज्ञा की सीमा मे आबद्ध होता है। अपने नपे तुले शब्दो में वे उपदेश देते हैं जिसका एक मात्र उद्देश्य आत्म जागृति होता है। उनके इन उपदेशो के प्रकाशन या मुद्रण से उनका कोई सम्बन्ध नही है अत इस पावस प्रवचन माला मे कोई भी शब्द या वाक्य सदोष आ गया हो अथवा मूल भावो मे कोई अन्तर दिखाई दे तो उसके लिये हम ही उत्तरदायी हैं, क्योकि ऐसी भूल हमारे से ही प्रमाद वश सभव है। गुरुदेव का कार्य तो प्रवचन देना मात्र है। उनके प्रकाशन, मुद्रण एव प्रसार

की समस्त व्यवस्था हमारी अपनी है। जिसकी भूलो को स्वीकार करना भी हम अपना कर्त्तव्य समझते है।

पावस प्रवचन माला को व्यवस्थित रूप देने मे आचार्य श्री के सुशिष्य श्री शान्ति मुनि जी महाराज के योगदान को भुलाया नही जा सकता, आपने इन प्रवचनो का अवलोकन करके हमारे इस कार्य को सुगम बनाया है इसके लिये समिति उनकी कृतज्ञ है। इसके अतिरिक्त वे प्रमुख रूप से सर्व श्री बालचन्द जी बैंद, नरेन्द्र जी भाणावत, चेनसिंह जी बरला, प्रेमराजजी बोगावत, श्रीचन्द जी सुराणा, 'सरस' एव श्री सुगनचन्द जी तातेड चुन्नीलाल जी ललवानी आदि महानुभावो ने अपना जो भावनापूर्ण सहयोग दिया है, तथा श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस के मालिक श्री रामनारायण जी मेडतवाल ने बडी तत्परता के साथ सुन्दर मुद्रण कर समय पर कार्य सपन्न किया एतदर्थ हम उनके प्रति भी अपना आभार प्रदर्शित करते हैं।

यदि समग्र समाज ने इन प्रकाशनो को पसन्द किया तथा विज्ञ पाठको ने इनको पढकर अपना कर्त्तव्य बोध लिया तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक समझेंगे।

प्रस्तुत सकलन की श्रृखला मे आगे भी इस चातुर्मास मे आचार्य श्री द्वारा दिये गये समस्त प्रवचनो का पावस प्रवचन के नाम से विभिन्न सकलन प्रकाशित करने की प्रवचन प्रकाशन समिति की योजना है। इस रूप से जयपुर चातुर्मास की पवित्र स्मृति तो रहेगी ही किन्तु यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि भी होगी। आशा है कि सभी सहृदय सज्जनो का सहयोग मिलता रहेगा।

विनीत
पारसमल डागा
सयोजक एव प्रबन्ध सपादक
प्रवचन प्रकाशन समिति

जयपुर
लाल भवन
४-१०-७२

चारित्र चूड़ामणि जैनाचार्य

श्री १००८ नानालालजी

महाराज साहब

के

जयपुर चातुर्मास

के

प्रेरक-पावन प्रवचन

हम सबको आत्म-जागृति में

सहायक हों।

श्री अखिल भारतीय

साधुमार्गी जैन संघ

बीकानेर

समयं तत्थुवेहाए अप्पाण विप्पसायए
—आ

राग-द्वेष उत्पन्न करने वाले पदार्थों के प्रति समता—उपेक्षाभाव रखते हुए आत्मा को सदा प्रफुल्लित रखना चाहिए।

---

१ | सुख का मार्ग—समता

जय जय जय भगवान, जय जय भगवान,
अजर अमर अखिलेश निरंजन, जयति सिद्ध भगवान। जय जय०
अगम अगोचर तू अविनाशी
निराकार निर्भय सुखराशी।
निर्विकल्प, निर्लेप निरामय निष्कलंक निष्काम। जय जय० ३।

जीवन की एकरूपता

यहा पर परमात्मा की प्रार्थना की गई है क्योकि इस विश्व मे प्रत्येक भव्य प्राणी के लिए प्रभुपद चरम आदर्श हैं। मानव को किस रूप मे बनना है, और वास्तविक मानव जीवन की सार्थकता किसमे है, इस बात को समझने के लिए किस दिव्य आदर्श की आवश्यकता है, और वह दिव्य परमपवित्र आदर्श क्या है ? जिसमें किसी भी प्रकार का कलक न हो, विकास की चरम सीमा हो,

अर्थात् आत्मिक शक्ति का सर्वाङ्गीण विकास जिसमे हो चुका हो, जाति, गोत्र, व्यक्ति, पार्टी से सर्वथा भिन्न हो, समकारक हो और वास्तव में प्राणियो के लिए समभाव का चरम स्वरूप हो। ऐसे आदर्श को सामने रखकर यदि मानव अपनी वृत्तियो को मोड दे दे तो आज जो ससार की विषम दशा दृष्टिगत हो रही है, वह सारी की सारी समाहित हो जाय। मानव का मस्तिष्क जव नही समझता है तो—मस्तिष्क मे अनेक प्रकार की विषम वृत्तिया घर किये रहती है, जब मस्तिष्क विषमता की भावना को लेकर चलता है तो भावना के अनुसार उस मानव की वृत्तियाँ भी विकृत वनती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो मानव का मस्तिष्क विचारो का एक मुख्य केन्द्र है, उस केन्द्र मे यदि समता भाव के साथ वास्तविक तत्त्व दृष्टि आ जाय, विचारो का परिमार्जन होकर शुद्ध वृत्तियो का प्रादुर्भाव हो तो मस्तिष्क सुधर जाय, तात्पर्य यह है कि विचारो की शुद्धि हो मस्तिष्क की शुद्धि है और विचारो की शुद्धि से आचार पवित्र बनता है। उस व्यक्ति की वाणी की धारा भी पवित्र गगा की तरह बहने लगती है, और जो भी वचन व्यक्त होते है वे प्रत्येक मानव के दिल को प्रमुदित करने वाले बन जाते है। विचारो के वदल जाने से इन्सान का जो आचार होता है, वह भी बदल वगैर नही रहता है। विचार, आचार और उच्चार जब तीनो की एक-रूपता बनती है। उस वक्त मनुष्य के स्वय के जीवन की विषमताओ की तमाम स्थितियाँ समाहित हो जाती है, और वह अपने जीवन मे एकरूपता की भावना का अनुभव करता है। वहभावना पास-पड़ौस मे रहने वाले व्यक्ति को प्रभावित करती है और विस्तार करते हुए वह समाज, राष्ट्र और विश्व को आप्लावित करता है। आज इसी अनुसधान की आवश्यकता है।

आज यद्यपि विश्व के अन्दर मानव का मस्तिष्क शान्त नही है।

वह विभिन्न प्रकार की खोजो में लगा हुआ है। वह चाहता यही है, कि इस मानव जीवन से परम शान्ति का स्वरूप, परम पवित्र रूप, वास्तविक सुख का स्थान उपलब्ध हो। इस आकांक्षा से व्यक्ति अपना रास्ता स्वतः बनाता जाता है। अपने मन की कल्पना के अनुसार वह खोज मे लगता है। जब उसे ज्ञात होता है कि अमुक स्थल पर कुछ उसे उपलब्धि होने वाली है तो वहाँ जाने मे भी वह सकोच नही करता है चाहे वह समुद्र की गहराई मे हो, चाहे वह पहाड़ो की विकट ऊँचाई मे हो, चाहे भयावना जगल हो, लेकिन मानव उस उपलब्धि के लिए अपनी सारी चिंताएँ छोड़कर आगे बढता ही जाता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। विज्ञान प्रगति कर रहा है किन्तु यह प्रगति अधूरी है क्योकि इस वैज्ञानिक स्थिति के साथ मे, मानव का मस्तिष्क विज्ञान ही को सब कुछ समझकर चल रहा है। विज्ञान के विषय मे यदि विस्तृत व्याख्या की जाय तो किसी के मतभेद का प्रश्न ही नही आता। विज्ञान के अन्दर सब तत्वो का समावेश है, विज्ञान के अन्दर सब का समन्वय है। यदि विज्ञान के अर्थ को सकुचित किया जाय और सिर्फ भौतिक तत्वों के विकास को ही विज्ञान कहा जाय तो वह विवाद का विषय बन जाता है क्योकि विज्ञान भौतिक तत्वो का भी होता है और आध्यात्मिक जीवन के साथ भी उसका गहरा सम्बन्ध है। एक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन से ही विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। लेकिन मानव का मस्तिष्क, अन्तर की उस आध्यात्मिक शक्ति को लक्ष्य बनाने मे अभी तक पूरा कामयाब नही बन रहा है। यही कारण है कि वह बाहरी पदार्थों में सुख-शान्ति को खोज रहा है। इस प्रकार विज्ञान की अनेको उपलब्धियाँ होने पर भी मानव को अभी तक सन्तुष्टि नही मिल रही है, शान्ति और समता के दर्शन पूर्ण रूप से नही हो रहे हैं। मानव तथाकथित उपलब्धि से सन्तुष्ट है, लेकिन वस्तुतः यह स्थिति दिन-प्रति दिन

उसके जीवन को विषमतर बनाती चली जा रही है। वह चाहे भू-मण्डल से उठ कर गगनमण्डल में उडने के लिए, चाहे आकाश के अन्दर चमचमाते हुए सितारो को पकडने के लिए दौड़े, चाहे तथा-कथित चाँद आदि ग्रहों पर पहुच जाय, लेकिन वहा पर भी वह वास्तविक शान्ति का स्वरूप, परमपवित्र रूप उपलब्ध होने वाला नही है। एक दृष्टि से देखा जाय तो यह खोज एकागी बन रही है, उस एकागी खोज को मोडदेकर सर्वांगोण खोज के साथ अगर जोडा जाय तो मानव-जीवन की तमाम समस्याएँ एक समता के धरातल पर सुलझ सकती है।

अभी जिन सिद्ध परमात्मा की प्रार्थना की गई है उस प्रार्थना में अनुसधान का सकेत है। आज भौतिक अनुसधान तीव्र गति से बढ रहा है किन्तु आध्यात्मिक अनुसधान के अभाव मे वह निर्जीव है, उसमे वह रौनक नही है जो आज के मानव जीवन के लिये नितान्त आवश्यक है अत· हमें आध्यात्मिक अनुसन्धान की ओर जीवन को मोड़ देना है। इसीलिए कविता मे सकेत दिया गया है—

"तुझ मे मुझ में भेद न पाऊं ऐसा हो सधान।
अजर अमर अखिलेश निरजन जयति सिद्ध भगवान॥"

बन्धुओ, कविता का सकेत निमित्त मात्र है, लेकिन वह सकेत यदि हमारी अन्तर की दृष्टि को, अन्तर की जिज्ञासा वृत्ति को अन्तर की तमन्नाओ को, अन्तर के उल्लास आदि को आध्यात्मिक दृष्टि की ओर मोड़ दे और हम आध्यात्मिक अनुसन्धान मे लग जायँ तो कविता का सकेत हमारे लिये आदर्श बन सकता है। इस कड़ी मे तो बड़ा लम्बा-चौडा सकेत दिया गया है। परमात्मा का अनुसधान करने के लिए "तुझ मे मुझ मे भेद न पाऊँ, यह लक्ष्य के रूप मे रखा गया है। आत्मा का विकास इतना हो कि परमात्मा के तुल्य मैं बन जाऊँ। यह वास्तविक समता का परम आदर्श है, और उस स्थिति मे गरीब और अमीर का भेद नही है, सुख और दुर्भाग्य की स्थिति

नही है, वह वास्तव मे स्थायी समता का परम रूप है। उस परम रूप का अनुसधान करने के लिए यदि व्यक्ति निश्चय कर लेता है कि मैं अनुसधान के साथ भगवान के तुल्य बनूँ, इतना बडा लक्ष्य जब स्थिर होता है तो वह व्यक्ति उस लक्ष्य को केवल आदर्श के रूप मे नही रखेगा, लेकिन यथार्थवाद की भूमिका पर वह जीवन को सुधारने का प्रयास करेगा। और सुधार की स्थिति के साथ जब जीवन में परिवतन होगा उसका आचरण उसी समता सिद्धान्त के साथ जोड़ कर उस रास्ते पर चलेगा तो उस जीवन का रूप कुछ और ही होगा।

आत्मा में परमात्मा

मैं इधर उधर परिभ्रमण करता हू। वह परिभ्रमण उसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए है। आत्मिक शक्तियो का विकास हो और जन मन मे समता सिद्धान्त की भावना प्रचारित हो। यद्यपि आज विश्व के अन्दर जिन-जिन बातो का वायुमण्डल बन रहा है, वह चाहे राजनैतिक धरातल पर हो, चाहे सामाजिक क्षेत्र मे हो, उन क्षेत्रो मे जो यह आवाज बुलन्द हो रही है कि समता प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का अग बने। शाब्दिक दृष्टि से भले ही उसे समता न कहकर, समाजवाद के रूप मे कहे लेकिन वह समाजवाद भी वास्तविक हो। वह समाजवाद भी प्राणवान कब बनेगा, जब कि वह समता सिद्धान्त दर्शन को अपने स्वरूप मे स्थान देगा। समता सिद्धान्त-दर्शन का तात्पर्य सबको एक ही रूप मे देखने का नही है। बच्चा बच्चे के रूप मे रहेगा, वृद्ध वृद्ध के रूप मे समझा जाएगा, तरुण तरुण के रूप मे देखा जाएगा। बच्चे की आवश्यकता क्या है अर्थात् बच्चे को किस प्रकार की सामग्री की आवश्यकता प्रेरित कर सकती है यह भी देखना होगा। इसप्रकार समता की व्यापक परिभाषा के अनुसार जो वर्गीकरण होगा वह समता सिद्धान्त के साथ होगा। समता सिद्धान्त वस्तु के वास्तविक रूप को उपस्थित करता है। जो वस्तु जैसी है उसे

उसी रूप में देखा जाय। उसके वास्तविक रूप को विकृत न करके वस्तुतत्त्व का निर्णय किया जाय तो समता सिद्धान्त दर्शन का दार्शनिक रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। किन्तु हम समता सिद्धान्त के दार्शनिक रूप में ही न उलझ जाएँ उसे जीवन के कर्तव्य क्षेत्र मे चरितार्थ करें ताकि समता सिद्धान्त के अनुरूप समता जीवन दर्शन का निर्माण है। और इस प्रकार जब समता जीवन दर्शन में छोटी-छोटी वातो को ठीक तरह से समाहित करके उनको समता सिद्धान्त के साथ असली रूप देंगे, तो समता जीवन दर्शन के धरातल पर उस आध्यात्मिक दर्शन की उपलब्धि होगी। जिसे हम आत्मदर्शन की संज्ञा देते हैं। आत्मदर्शन की प्राप्ति के साथ जव आध्यात्मिक उल्लास और आन्तरिक निर्विकारदशा जागृत होगी तो जीवन समता परमात्मा-दर्शन के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। वही समता की पराकाष्ठा होगी, वही समता का चरम स्वरूप होगा और वही आत्मा का चरम साध्य परमात्म पद होगा। अर्थात् आत्मा स्वय परमात्मा के रूप में परिलक्षित होगा। इसीलिए कहा गया है कि आत्मा स्वय परमात्मा वन सकती है। आचार्यों कथन का है **अप्पा सो परमप्पा**—जो आत्मा है, वही परमात्मा है, लेकिन कव ? जव सारी विषमताएँ दूर हो जायेंगी, सर्वत्र परम पवित्र समता का साम्राज्य हो जायेगा।

आत्मा जव चरम, सर्वांगीण समता रूप मे पहुच जाती है, तव वह निर्विकार दशा को प्राप्त हो जाती है, यही परमात्मा के तुल्य वनना है। इसी का अनुसन्धान हमे करना है, जिसका कि कविता में सकेत किया गया है।

यह जयपुर नगर राजस्थान की राजधानी के रूप मे प्रसिद्ध है। इस नगर में जव होली चातुर्मास के आसपास उपस्थित हुआ था और यहा कुछ रहने का प्रसग भी आया उसके पश्चात जयपुर संघ का अत्यधिक आग्रह होने से चातुर्मास का प्रसग भी यहा

बना। चातुर्मास की दृष्टि से मैं यहा आ भी गया हू लेकिन अब जयपुर सघ को क्या करना है ! राजधानी की जनता को अपने जीवन मे वास्तविक रूप से कुछ परिवर्तन लाना है ? या उन्ही कुरीति रिवाजो के साथ अपने जीवन की इतिश्री करनी है। जो बातें इतने दिनो से चलती आ रही है, प्रत्येक व्यक्ति के साथ जो कुछ रूढिया लगी हुई है जिनमे वह अपने आपको आबद्ध पाता है, वह अपने आपको खोलने की कोशिश नही कर पा रहा है, अपने आपको व्यापक बनाने के लिए ध्यान नही दे रहा है। अब भी उसी भावना के साथ उन्ही रूढियो मे बँधे रहना है या अपनी आत्मा की भावना को साथ लेकर एकत्व भावना के साथ आगे बढना है ? यह सारा चितन जयपुर की जनता को करना है। जयपुर की जनता को ही नही अपितु सपूर्ण मानव समाज को इस विषय मे गहरा चिन्तन करना है। मैं माध्यम बन रहा हू। अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बातें बतला रहा हूँ। लेकिन मैं जो बतलाता हूँ वही आप ग्रहण कर लें उसी को आप मान ले यह मेरा आग्रह नही है। मैं जो कुछ बातें कहता हू उन बातो को आप समझने की कोशिश करें। यदि आपको सत्य, तथ्यात्मक लगे, आपको सही चीज मालूम हो, यदि आपके जीवन के लिए हितावह हो, तो ग्रहण करें। मै किसी के ऊपर थोपने की स्थिति मे नही हू। हा, यदि किन्ही को मेरे विचारो को समझने मे भ्राति हो जाय तो उस भ्राति को निकालने के लिए हर व्यक्ति के लिए दरवाजा खुला है। वे दिल खोल कर पूछ सकते हैं कि ये विचार आपने किस रूप मे कहे हैं ? इनका क्या तात्पर्य है ? इसके लिए मैं सदैव तत्पर हू। लेकिन आगे जिस स्थिति से आप लोगो को, एक प्रकाश प्राप्त करना है और नितान्त समतापूर्ण स्थिति के साथ यदि कुछ कार्य प्रारम्भ करना है तो आज जो समाजवाद की पहल राजनैतिक क्षेत्र मे चल रही है उसमे जिन-जिन बातो की कमी है, उन कमियो पर

विचार करते हुए उसके अन्दर आध्यात्मिक भावना का पुट देना है। वैज्ञानिक दृष्टि से उसका समन्वय करते हुए आप, समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर अपने जीवन की गुत्थियो को सुलझाने की कोशिश करे और जो रूढिगत परम्पराएँ है जिनके अन्दर मानव घुट रहा है। उनके कुछ परिष्कार का प्रयास करें। आज मध्यम वर्ग की कैसी दुर्दशा है? मानव कुछ समझ नहीं पा रहा है कि वह क्या करे? जिसके पास कुछ अधिक पैसा इकट्ठा हो गया है, वे अपने आप में फूले नही समा रहे हैं और अपने आपको समझ रहे हैं कि वे तो सब कुछ बन गए, लेकिन जिनके पास इसकी कमी है वे मन मसोस कर बैठे हैं। आज इस विषमता की खाई को पाटने के लिए समता सिद्धान्त दर्शन की नितान्त आवश्यकता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने विषम जीवन को समरूप में देख सके।

जीवन की भूमि को सम बनाओ

यह चातुर्मास का समय है और चातुर्मास की दृष्टि से सतो का आगमन हुआ है। इन संतों के आगमन और इस चातुर्मास के प्रसंग में आप आध्यात्मिक क्षेत्र में और जीवन के क्षेत्र मे एक दृष्टि से कृषक बन जायँ। यद्यपि भारत देश कृषि प्रधान देश है, जन-सख्या की दृष्टि से यहाँ किसान अधिक है। ये किसान खेती करने के लिए हल हाककर जमीन के अन्दर बीज डालकर खेती करते है और उनके आधार पर जनता का जीवन चलता है। मै यह चाहूंगा कि आप भी एक तरह से कृषक बनें। आप सोचेंगे कि क्या इस शहर के अन्दर हमसे खेती करायेंगे, हल चलायेगे। मैं कहूंगा कि वह हल तो आपके अन्य बन्धु हाकते ही हैं। आप उस हल को न हाके लेकिन जीवन के अन्दर हल हाकिए, अपने जीवन को देखिए कि हमारे मन में, हमारे दिल और दिमाग मे, कौन सी घास पैदा हो रही है? किसान खेती करने लगता है तो

पहले खेत को साफ करता है, उसके अन्दर कंकर पत्थर रह जायेंगे तो खेती ठीक से नही हो पायेगी। इसलिए बीज बोने से पहले किसान खेत को साफ करता है, ककर पत्थरो को बाहर निकालता है और खेत को समभाव से समतल करता है। आपने कभी किसानो को देखा होगा कि किस प्रकार खेतो को साफ करके बीज बोते है, और बीज बोने के साथ ही वे निश्चित नही हो जाते हैं। लेकिन उसमे यदि कचरा उत्पन्न हो जाए तो उसको भी निकालने का प्रयास करते है और तभी जा करके वे समय के वाद फसल की प्राप्ति करते हैं। वैसे ही जीवन की खेती का प्रसग है। अपने जीवन की खेती को पकाने के लिए इस चातुर्मास के प्रारम्भ मे प्रत्येक मनुष्य अपने मन मस्तिष्क मे जो विषमताओ के ककर-पत्थर पडे हुए है उनको वाहर निकालें, उनको फेक दे और ककरो को फेंकने के वाद फिर आगे समता सिद्धान्त दर्शन के आधार पर वीतराग वाणी को श्रवण करें और इसके साथ जो अपने लिए हितावह हो, उसको ग्रहण करे और जो विषम भावना है उसको छोड दें। जीवन की, अन्तर हृदय की भूमि जब सम होगी, स्वच्छ होगी तभी उसमे धर्म की, आत्मिक सुख की फसल पकेगी। इस दृष्टि से यदि मानव चले और समता सिद्धान्त दर्शन को जीवन मे अपनाते हुए, इस लक्ष्य को अपने सम्मुख रखें तो यह चातुर्मास सारे मानव समुदाय के लिए आदर्श उपस्थित कर सकता है।

आप यह न समझिये कि यहाँ सिर्फ महाराज अपने लिए कुछ करते होगे, मेरे लिए तो मै साधना मे लगा हुआ हू और मै मौन रहकर भी साधना कर सकता हू, गुफा मे बैठकर भी साधना करने की स्थिति मे रह सकता हू लेकिन जब इस समाज मे रहना है तो उसके हित की दृष्टि से भी सोचना पडेगा, समाज के हित की वातो को भी सामने रखना पडेगा और जो सामाजिक दृष्टि से हितावह है, वह मेरे लिए भी हितावह हो सकती है और व

प्रत्येक मानव के लिए भी हितकर है, इसी दृष्टिकोण से मै यहाँ कह रहा हू, इसमें किसी व्यक्ति विशेष या किसी पार्टी विशेष का प्रसग नही है। मै तो यह चाहता हूं कि व्यक्ति-व्यक्ति में जो विषमताएँ है वे दूर हों,व्यक्ति,पार्टी,जाति सब एकरूप होकर मानव के कल्याणार्थ कार्य करे और इस प्रकार आगे बढते हुए स्व-पर के जीवन को पवित्र बनावे।

सामाजिक कुरीतियों के कारण अगर कोई विषम परिस्थिति आ गई है, भेदभाव की कोई दिवाल खडी हो गई है, कोई पोइन्ट खड़ा हो गया है तो उसको निकालने की कोशिश करे। उस विपमता को निकालने से आपका जीवन कितना आनन्द और उल्लासमय हो सकेगा यह तो अनुभव की वात होगी।

जीवन में भी एक धरातल बनाइए

चातुर्मास मे इस जीवन के समता धरातल के विषय मे चिन्तन करना है कि आपने यह लाल भवन बनाया। यह पहले कैसा था और अब किस रूप में हो गया। एक सरीखा हो गया। अब आप सवके सब एक धरातल पर बैठे हुए है। नीचे एक भी ककर चुभ नही रहा है। ककर चुभ रहा है क्या? कोई आपको कष्ट नही हो रहा है। उसी तरह से आप समाज के अन्दर भी एक धरातल बनाइये। आप अपनी स्थिति मे रहते हुए एक ऐसा रगमच तैयार करे जीवन की खेती ऐसी तैयार करे जिसके अन्दर समता सिद्धान्त का एक ऐसा प्लेटफार्म बने। आप स्वय ही उसमे न बैठे, उसमें अग्रवाल, ओसवाल और माहेश्वरी ही न बैठे, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ही न वैठे, लेकिन उसके ऊपर पूरी मानव समाज का अधिकार हो, और सभी मानव उसके ऊपर शाति की सास ले सके, पूरे मानव वर्ग को शान्ति का अनुभव हो सके, पूरी मानवता जहाँ से यह सीख सके कि वर्तमान जीवन कैसे जीये और भावी जीवन का उज्ज्वल लक्ष्य कैसे रख सके? इन सब वातो का दृष्टिकोण सामने रखकर इस जीवन के क्षेत्र को समता सिद्धान्त का धरातल

तैयार कर समरूप बना देने का प्रयास किया गया तो जयपुर चातुर्मास का यह प्रकाश दूर-दूर तक प्रकाश फेकेगा। हवाई जहाज आकाश मे उडता है लेकिन कहाँ पर बड़ा स्टेशन है, इसका यात्री को पता कैसे लगता है। यह तो आप जानते हैं। कुछ प्रकाश की लाइट पडती है तो आप देख लेते है कि बडा स्टेशन आ गया। यह राजधानी का बडा स्टेशन है। इस स्टेशन की तरफ राजस्थान का ही ध्यान नही है, मैं सोचता हू कि दूर-दूर के क्षेत्रो का ध्यान लगा हुआ है, और इसकी चमचमाती हुई रोशनी देखने के लिए कई तैयार हो रहे हैं। अगर राजधानी के अन्दर कोई ऐसा आदर्श और पवित्र कार्य जैन समाज को आह्लादित करने वाला हो और पवित्र समता सिद्धान्त का धरातल मानव मात्र के विकास का कारण बनता हो तो उस प्रकाश को लेने के लिए सब तैयार बैठे हुए हैं। यहाँ की सुगन्ध दूर दूर तक फैल सके यह उत्तरदायित्व जयपुर की जनता पर है। अत जयपुर की जनता मे जो पूर्वग्रहीत आग्रह की कोई भावना हो जिससे जाति, व्यक्ति, पार्टी के घेरे मे पडे हुए हो, जिससे भाई-भाई के साथ मे विकट परिस्थिति पैदा हो गई हो तो उन विषमताओ को दूर कर सारी स्थितियो को समाहित करके एक धरातल की स्थिति के साथ आदर्श उपस्थित करना है। इस चातुर्मास मे जयपुर की जनता को कृषक के रूप मे अपने दिल और दिमाग को साफ करते हुए एक ऐसी खेती पैदा करनी है, जिससे अनेको को तृप्ति मिल सके, उस तृप्ति के लिए आप सबको तैयार होना है, और उसकी तैयारी करने के लिए अभी से प्रवृत्ति प्रारम्भ कर देना है।

आप अपने जीवन की खेती तैयार करने के लिए, ककर-पत्थर एक तरफ करने के लिए, कचरा साफ करने के लिए एकत्व भावना से आगे बढ़ेगे। एकत्व भावना जब मन और जीवन मे जग जायेगी तब 'तुझ मे मुझ मे भेद न पाऊँ, इस स्थिति पर पहुंच जाए गे।

जाना कहां है ? हमें छोटी-छोटी बातों में न उलझ कर भगवान के तुल्य बनने की कोशिश करना है। उदाहरण के तौर पर किसी को कलकत्ते जाना है, वह जौहरीबाजार से निकलता है, जौहरी बाजार के अन्दर कोई व्यक्ति आकर उससे लड़ने की कोशिश करे कि कहाँ जाते ही मैं इतना मजमा खड़ा कर दूँगा, मैं यह कर दूँगा वह कर दूँगा उस समय वह कलकत्ते जाने वाला सोचेगा कि इस भाई का उत्तर दूँगा इससे कुछ प्रत्यालाप करूँगा तो रेल का टाइम चूक जाऊँगा और समय पर कलकत्ते नही पहुच पाऊगा, तो उस वक्त वह जौहरी बाजार के अन्दर उस व्यक्ति से लड़ने के लिए खडा रहेगा या मजमे की बात करेगा या तनातनी की बात करेगा या चुपचाप निकलकर चला जायगा ? गाड़ी के समय को समझने वाला, कलकत्ते टाइम से पहुचने की इच्छा रखने वाला आदमी, उस व्यक्ति से लड़ने की कोशिश नही करेगा। उसी तरह से हमारा परम लक्ष्य वहां जाना है और काफी दूरी तय करके जाना है तो, जो जीवन के क्षेत्र मे कोई जौहरी बाजार वाली बाधाएँ खड़ी करदे और गलत वायुमण्डल तैयार करने की कोशिश करे तो, मैं सोचता हूँ कि उनकी तरफ ख्याल नही करते हुए अपने जीवन की मन्जिल पर मुस्तैदी से आगे बढते हुए अपूर्व आदर्श उपस्थित करने का प्रयत्न होना चाहिए।

आप इस बात को ध्यान मे रखेगे कि समता-सिद्धान्त दर्शन, समता जीवन दर्शन, समता आत्म दर्शन और समता परमात्म दर्शन इन चार बातों का उद्देश्य जीवन की कला है, जीवन का परम अनुसन्धान है। आप यदि इन बातो का गहराई से चिंतन मनन करेंगे, समता को जीवन मे उतारने का प्रयत्न करेंगे—तो जीवन के दु:ख वैषम्य और विपदाएँ अवश्य ही दूर होंगे और आत्मा परमात्मा की स्थिति तक पहुँच सकेगा।

लाल भवन, २० जुलाई १९७२

●●

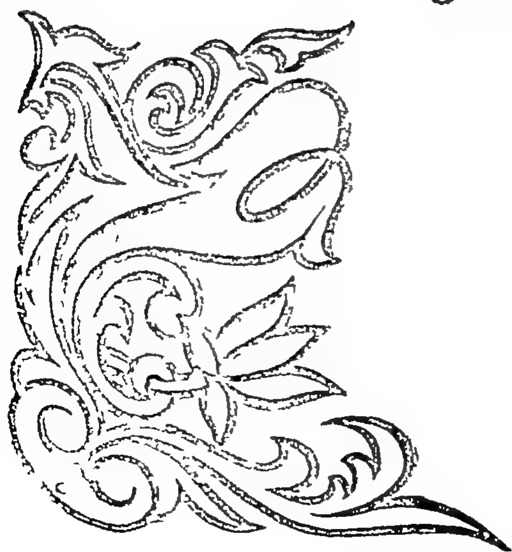
ज्ञान मनुष्य का
तीसरा नेत्र है।
इस ज्ञान नेत्र को
खोलने वाले सद्गुरुदेव

आचार्य श्री नानालालजी म. सा.

के

चरणों में कोटिशः अभिवदन।

सुन्दरलाल तातेड़
दसानियो का चौक,
बीकानेर



असंखय जीविय मा पमायए

—उत्तराध्ययन ४।१

जीवन बड़ा असस्कृत है, टूटने के बाद पुन सध नही सकता, अत. प्रमाद मत करो।

---

२ | संस्कारित जीवन

सुमति जिनेसर साहिवा जी
मेघरथ नृपत्नो नन्द !
सुमगला माता तणो जी !
तनय सदा सुखकन्द !
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !
सुमति सुमति दातार
महा महिमा निलोजी !
प्रणमूं बार हजार
प्रभु त्रिभुवन तिलोजी !

प्रभु सुमतिनाथ भगवान् के चरणो मे प्रार्थना की कड़ियो का उच्चारण किया है। प्रभु के अनेक नाम है। अनेक नामो से प्रभु

को पुकारा जा सकता है। उनमें से एक सुमतिनाथ भी है। सुमति का अर्थ है—सद्बुद्धि।

जिनकी सन्मति होती है, जिनका ज्ञान सम्यग् होता है, पवित्र अध्यवसाय जिनकी आत्मा के अन्दर चलता है—वे सुमति कहे जा सकते हैं। लेकिन ऐसी सुमति रखने वाले जो समस्त प्राणियो के स्वामी के रूप में प्रसिद्ध है, वे सुमतिनाथ कहलाते है। यहा सुमति नाथ भगवान् के चरणो में कवि ने प्रार्थना के रूप में सकेत किया है और यह बताया है कि सुमतिनाथ सुमति के दाता है।

सुमति के दाता दयालु कहलाते है। वे सुमति का दान भी करते है। आज सुमति के लेने वाले व्यक्तियो की कमी नही है? आज देखा जाय तो संसार के अन्दर जितने प्राणी हैं उन सव प्राणियो को सुमति की आवश्यकता है। प्राणी जव सुमति को छोड़ कर कुमति के अधीन होता है तब वह अपने आपको खतरे में डालता है। उसका परिवार में सम्मान नही रहता है। वह समाज में भी विषमता पैदा करता है और राष्ट्र के अन्दर भी वह बहुत भयावह दृश्य उपस्थित कर देता है। यह कुमति का कार्य है। इस कुमति के कारण से ही ससार तबाह हो रहा है। इसलिए ऐसे प्रसंग मे सुमतिनाथ भगवान् की वह दातार वृत्ति, वह उदार वृत्ति आवश्यक है। लेकिन सुमतिनाथ भगवान सुमति देंगे किसको? सुमति लेने वाले व्यक्तियो को, जिज्ञासु व्यक्तियो को; किन्तु कव? जव वे उस रूप में उपस्थित हों। दातार अपनी उदारता से कुछ देना चाहता है लेकिन लेने वाला भी तो चाहिये। लेने वाला इन्सान यदि तैयार हो जाता है, तो दातार अपनी उदारता के साथ दे भी सकता है। प्रश्न होगा, महाराज! लेने वालो की कमी नही है। प्रार्थना हम कर ही रहे हैं। आपने जिन शब्दो का उच्चारण किया, जिन प्रार्थना की कडियो के साथ आपका सम्वन्ध जुडा है, उनके साथ हमारा भी सम्वन्ध रहा हुआ है। हम इसी के लिए यहां आये हैं कि हम यहां भगवान की वाणी का श्रवण

करके अपने अपने जीवन में सुमति का साम्राज्य स्थापित करे। इस सामूहिक प्रार्थना में आपका सामूहिक स्वर निकला हो या नही, मैंने इसका उच्चारण किया है वह आपकी सामूहिक भावना की दृष्टि से ही किया है। आप कहेगे, जब हमे सुमति की अभिलाषा है, अपेक्षा है, तब ही यहा आकर खड़े हुए है, बैठे हैं। तो वह सुमति सुमतिनाथ से प्राप्त क्यो नही हो जाती है ? किन्तु इस पर जरा चिन्तन करना है कि प्रार्थना का उच्चारण कर लेने मात्र से, या प्रभु से याचना करने भर से सुमति मिलने वाली नही है।

सुमति-अन्तर में जागृत की जाती है

एक दृष्टि से देखा जाय तो सुमति लेने देने जैसी चीज नही है। यह तो पैदा की जाती हैं। पैदा से तात्पर्य प्रादुर्भाव से है, प्रकट करने से है, जागृत करने से है न कि नवीन उत्पत्ति करने से। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश भी होता है। लेकिन सुमति आत्मिक शक्ति का परिणाम है। आत्मा है. वह स्थायी है तो उसके मौलिक गुण भी स्थायी होगे। इसलिए आत्मा के गुणो की उत्पत्ति नवीन प्रकार से नही होती है। उसका आवरण मात्र हटता है, शक्ति पैदा होती है, आविर्भाव और तिरोभाव भी हुआ करता है, तो उस शक्ति को प्रकट करने के लिए प्रयास करना है। प्रार्थना में जो एक दूसरे को सुमति देने का प्रसग आया है, वह औपचारिक है। जिन्हे सुमति प्राप्त है, वे लुटाते चले जायँ लेकिन लेने वाले की स्थिति नही बनेगी तो ? जैसे आप कोई वस्तु उठा कर किसी के हाथ में देते है, उस तरह देने का प्रश्न तो नही है। हम भगवान के आदर्श को देखकर अपने अन्दर की स्थायी शक्ति को पहिचाने, हमारे जीवन मे सुमति का भण्डार भरा हुआ है उसका प्रादुर्भाव करने के लिए प्रकट करने के लिए हम प्रयास मे लग जाते हैं तो हम सुमति का भण्डार भरा पाते हैं, इसी उद्देश्य को पूर्ति के लिए यहा वीतराग

वाणी के प्रसंग से आपके सामनेविचार रखे है, उनके रखने का प्रसंग भी है। जिस समय जम्बूस्वामी सुधर्मा स्वामी के पास पहुँचे उस समय जम्बू स्वामी के मन में प्रबल जिज्ञासा हुई—मैं भी सुमति प्राप्त करूं। इस ससार में रहते हुए कुमति के चक्र में अनादिकाल से महा दुःख और झञ्झावतो में जीवन विताया, लेकिन अब शान्ति की स्थिति में पहुंचा हू। सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को उपदेश दिया और जिस तत्व का सुमति के साथ सम्बन्ध जुड़ता है उसका सकेत देते हुए कहा—

उस समय भगवान महावीर राजगिरि पधारे, राजगिरि नगरी में ऋद्धि सिद्धि की प्रचुरता थी।" उस नगरी मे मानव की सुमति का भलो-भाति विकास करने के लिए उन्होने सुधर्मा स्वामी को जो बाते बतलाई उन ही बातो को सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी के सम्मुख प्रकट कर रहे है। वे बातें हमारे सामने भी शास्त्र के माध्यम से आ रही है। हम सुमति के द्वारा शाति का अनुभव करे और परलोक उज्ज्वल बना सकें—इस बात का प्रसग लम्बे चौड़े विस्तार के साथ या सूक्ष्मता से जो भी मिले वह श्रवण करे। वह श्रवण कहा से करेगे ? किस रूप में करेगे ? सुमति के साथ श्रवण करे तो वह श्रवण सुखकारी होगा। वह जीवन मे विवेक शक्ति पैदा करेगा। यदि सुमति को हटाया और कुमति के साथ श्रवण किया तो कुमति में जो चीज आयेगी वह कुमति रूप मे ही परिणत होती हुई चली जायेगी। आपको मालूम है, घासलेट का तेल जिस बर्तन में हो, उस बर्तन मैं यदि बढिया से बढिया घी भी डाल दिया जाय तो उस घी की क्या दशा होगी ? घी को चखे तो कैसा लगेगा ? सुगन्ध कैसी हो जायेगी ? सारी की सारी घासलेट में परिणत हो जायेगी।

संस्कारित जीवन

जिस मानव के मस्तिष्क मे सुमति का सुन्दर सरोवर लहलहा

रहा है,,उसमे वीतराग धर्म की वाणी का श्रवण हुआ तो वह सारा का सारा अमृतमय हो जायेगा। उसे अमृतमय वनाने के लिए हम अपने जीवन को टटोलें। भगवान ने निर्देश दिया है, कि हे मानव ! अपने जीवन को देख यह जीवन सस्कार हीन वन रहा है—**असखयं जीविय मा पमायए"** यह भगवान महावीर की उद्घोषणा प्रत्येक मानव के लिए है, और उसमे कहा गया है कि हे मानव! तुम्हारे जीवन के अन्दर सुमति के सस्कार नही हैं, तुम्हारा जीवन असस्कारित है, असस्कारित जीवन मे किसी तत्व को डाल दोगे तो उसका सस्कार नही हो पायेगा, उसका दुरुपयोग होगा। अपरिपक्व घडे मे यदि अमृत डाल दोगे तो घडा भी चला जायेगा और अमृत भी। आपको अगर सस्कारित जीवन वनाना है तो सुमति को जागृत कीजिये, सुमति के बिना सस्कारित जीवन नही वन सकता है। कुमति का जीवन असस्कारित जीवन है,अज्ञान का जीवन है। आप देख रहे है,एक बच्चे के सामने वहुमूल्य रत्न रख दीजिये। आप अपनी अगूठो का तीन लाख या पाच लाख का हीरा रख दीजिये। वह वच्चा उस हीरे की कीमत क्या करेगा ? वह वच्चा उस हीरे को समझेगा ? वह बच्चा उस हीरे को यत्न से रखने का प्रयत्न करेगा ? नही! वह तो उसे उठाकर फेंक देगा। बच्चे के जीवन मे हीरे की पहचान का सस्कार नही है इसलिए वह वच्चा उस ज्ञान के अभाव मे, प्रारभिक स्थिति मे असस्कारिन होने के कारण हीरे के विषय मे कुछ नही जान पा रहा है।

आप देखते है मनुष्यो की आकृति वाले प्राणी, हूवहू मनुष्यो की चेष्टाओ का अनुसरण करने वाले प्राणी। उनके अन्दर मनुष्यो सरीखे सस्कार पूर्ण रूप से नही पाये जाते। आपने जयपुर मे भी कभी-कभी उनका अवलोकन किया होगा—जो वन्दर जाति कहलाती है। जिनके इधर-उधर आपको दर्शन होते है। माधोपुर के अन्दर तो इनका वहुत वोलवाला है। वहा स्थानक के अन्दर भी वहुत ये उपद्रव

करते है। कभी-कभी मुखवस्त्रिका तक उठा ले जाते है, कभी-कभी वस्त्र उठाकर ले जाते हैं। उन वस्त्रो को वे समझते नही है कि वे कैसे वस्त्र है और उन वस्त्रो की चिन्दी-चिन्दी करके, उनको बता-बताकर फाड़ डालते है। सिर्फ किसलिए ? रोटी के टुकडे के लिए और आप उनको रोटी डाल देते है तो आपकी जिन्स वे छोड़ देंगे। और नही देगे तो वे उन वस्त्रो को बता-बताकर फाड़ेगे। आप सोचिये की आप जैसे कपडो की कद्र कर रहे है, आप जिन वस्तुओ के पीछे बहुत मुग्ध हो रहे हैं उन्ही वस्तुओं को ले जाकर वे उनका दुरुपयोग करते है। आप कहेगे महाराज बन्दर जाति है। उसकी चेष्टा तो करीब-करीब मनुष्यों जैसी है लेकिन फिर भी मनुष्यों जैसे सस्कार नही है। उनका असस्कारित जीवन है। आप बन्दरों के जीवन को असस्कारित जीवन कहेंगे और संस्कारित जीवन को आप मनुष्य जीवन कहेगे। बन्धुओ ! सोचने की बात है। आज संस्कारित और असस्कारित जीवन का बड़ा प्रश्न है। जो मनुष्य जीवन जी रहा है लेकिन जीवन कैसा जी रहा है ? "**किं जीवनम्**" जीवन कैसा है ? और क्या है, आज यह प्रश्नवाचक चिह्न संसार के सामने मुंह बाये खड़ा है। जीवन का जब यह प्रश्न खडा होता है और सुलझता नही तब तक मनुष्य का जीवन जीवन नही कहला सकता। जीवन एक दृष्टि से देखा जाये तो मशीनरी की तरह चलता जा रहा है। मशीन को तो फिर भी कुछ समय के लिए छुट्टी मिल जाती है, मशीन हफ्ते मे एक रोज तो विश्राम लेती होगी लेकिन मानव जीवन की मशीनरी तो हफ्ते में एक दिन भी विश्राम लेती है या नही ? सरकार के डडे से चाहे व्यापार का लेनदेन बन्द कर दिया जाता होगा लेकिन उस दिन बन्द करने के बावजूद भी अनुमानतः दूसरे दिन अधिक भार आता होगा। मैं अनुमानत. शब्द इसलिए कह रहा हूं कि कुछ लोगो के शब्द मेरे कान में आते है। मैं कहता हूं कि रविवार को तो छुट्टी रहती है तो वे कहते है महाराज, रविवार

को तो डबल काम रहता है। उस मशीनरी की तरह जीवन को बिताने वाले व्यक्तियो के जीवन को मैं जीवन कहू ? आप उसको जीवन कहे ? नही। किसको जीवन कहना ? यह प्रश्न आपके सामने खडा है। आपके सामने ही नही वल्कि मानवमात्र के सामने यह प्रश्नवाचक चिह्न है। चिन्तन और मनन कीजिए। दो हाथ, दो पैर, मुँह और आँख यह आ जाने मात्र से क्या जीवन बन गया ? क्या अच्छा खाना खाने से जीवन वन गया ? या अच्छे वस्त्र पहनने से जीवन वन गया ? अच्छे और बढिया मकानो मे गद्दी तकिये लगाकर और पंखे की ठडी हवा खाने से जीवन वन गया ? क्या है जीवन ? कभी एकान्त के क्षणो में आप इस प्रश्न पर चिन्तन कीजिए।

क्या मानव मिट्टी के ढेले के रूप मे है ? क्या आज का मानव केवल एक तरह का पिण्ड या पुतला वन गया है ? उसको जीवन की कला याद नही, जीवन का स्वरूप ख्याल मे नही जिससे वह अपने जीवन को लेकर चले और कहे कि मैं जीवन जी रहा हू। अरे भाई कौन-सा जीवन जी रहे हो ? सस्कारित जीवन जी रहे हो या असस्कारित जीवन जी रहे हो। सस्कारिक जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है और असस्कारित जीवन जीने वाला व्यक्ति कुछ और ही होता है। रात और दिन का अन्तर है, प्रकाश और अधकार का फर्क है। असस्कारित जीवन में पग-पग पर ठोकरें लगती है। असस्कारित जीवन न स्वय को समझता है और न पर को समझता है, न स्वय के हित को देखता है और न पर के हित को देखता है। उसके जीवन की नौका विना पतवार के इधर-उधर भटकती रहती है। उसका जीवन कही ठिकाने नही रहता। ऐसा प्रमादी जीवन और इस प्रकार का असस्कारित जीवन विश्व के अन्दर जहा उपलब्ध होता है तो वहा अशाति की ज्वाला नही भडकेगी तो और क्या होगा ? जहाँ जीवन का विवेक और जीवन का पता नही, जहा जीवन के सस्कारो को परिमार्जन करने की

स्थिति नही, वहाँ जीवन की यही स्थिति है। आज आप प्रत्येक जीवन तत्व का चिन्तन कीजिए, जीवन के विपय मे मैं कह रहा हूं। इसके साथ ही साथ आप ससार मे जिन पदार्थों का अवलोकन करते है उनमें भी संस्कारित और असस्कारित दोनो तरह के पदार्थ पाये जाते हैं। जो संस्कारित पदार्थ है उनका जरूर महत्व है, पर जो असंस्कारित पदार्थ है उनका कोई महत्व नही।

आप कभी-कभी अपनी दृष्टि में विवाह शादियो के प्रसग पर इन वहिनो के सिर पर मिट्टी के कलशो को देखते होगे। सम्भव है वड़े शहरो के अन्दर नही हों लेकिन विवाह शादियो से प्रसगो पर घड़े पर घड़ा रख कर उसके गले में जेवर पहनाया जाता है। यहाँ शायद यह प्रथा नही होगी। यह प्रथा कम हो रही है, लेकिन गाँवों के अन्दर देखने को मिलता है कि वहिने विवाहो के प्रसग पर सुन्दर वस्त्र पहन कर, जेवर पहन कर गीत गाती हुई कुम्भकार के यहाँ पहुचती है और कलशो को लाती है, बडे और छोटे एक के ऊपर एक कलश चढाकर अपने जेवर उन घडो के गले मे डालती हैं। मेवाड़ के गाँवों मे आपको यह देखने को मिलेगा। वह फिर वड़े यत्न से चलती है, शायद उपवास करके उतने जतन से नही चलती होगी। जितनी वहाँ जतन से चलती है। उनका ख्याल रहता है कि यह घडा कही गिर नही जाये। सावधानी के साथ मन को एकाग्र करके चलती है और जव विवाह के मकान के दरवाजे पर जाती है तो यहाँ दूसरी बहने फिर उनका सत्कार करके आरती करके दरवाजे से ले जाकर अन्दर रखती है। वन्धुओ, इस प्रक्रिया को आप देख चुके होगे। नही देखा हो तो आप मस्तिष्क में ले लीजिए आप सोचिये यह किसकी कद्र हो रही है। वहिनो के सिरो पर मिट्टी क्यो चढे ? इन वहिनो को यदि कहा जाये इन विवाह शादियो के प्रसग पर कि आप जगल के अन्दर से एक मिट्टी का ढेला उठाकर अपने सिर पर रखकर चलिये। चलेंगी वे ?

नही। मिट्टी का ढेला उठाने के लिए कहेगे तो बड़ी नाराज हो जायेंगी कि क्या हमको मजदूरनी समझा है जो हमसे मिट्टी का का ढेला उठवा रहे हैं। लेकिन आप सोचिये उस मिट्टी के ढेले को सिर पर उठाने से अपना अपमान समझती हैं और उसी मिट्टी को वे घडे के रूप में सिर पर उठाकर लेकर आ रही हैं। क्या अन्तर पडा ? मिट्टी वही, लेकिन उस मिट्टी मे और उस मिट्टी मे रात और दिन का अन्तर पड गया। वह मिट्टी असस्कारित मिट्टी थी जो ढेले के रूप मे पडी थी, जिसके ऊपर कोई भी व्यक्ति टट्टी पेशाव कर सकता है, उसको कोई भी ठोकर मार सकता है, कुदाली से खोद सकता है लेकिन उसी मिट्टी को कुम्भकार ने उठाकर जव घडा बनाया, उस मिट्टी का उसने सस्कार करना चालू किया, यह सस्कार वडी मुश्किल से हुआ उसने उसे खूब मथा, राल मिलाई लेकिन मिट्टी ने सोचा कि मेरा तो सस्कार करना है, कुम्भकार ने उस मिट्टी के ढेले को सस्कार करने के लिए उसे चाक पर चढाया, उसको चक्कर भी खिलाया, लेकिन मिट्टी ने तो सोचा कि मुझे तो सस्कारित होना है। तो क्या वह मिट्टी नाराज हुई ? नही। इतने से ही कुम्भकार नही रुका। उसे आकार देकर ऊपर से उसे ठोका भी। आपने कुम्हार को देखा होगा। जोर जोर से करता है मडमड़, लेकिन फिर भी उसके अन्दर मे वह हाथ रखता है और उस घडे को पीटकर ठीक कर देता है—फिर भी मिट्टी सोचती है कि तुम खूब पीटो, मुझे तो सस्कारित होना है, पीटने के वाद भी कुम्हार ने चैन नही लिया और उसको कहाँ रखा ? आग के अन्दर। उसके अणु-अणु मे गर्मी पहुचा दी लेकिन उस मिट्टी ने सोचा कि खूव गर्मी पहुचाओ, लेकिन मैं घड के रूप को नही छोड़ूगी क्योकि मुझे तो सस्कारित वनना है। वह मिट्टी का घड़ा अपनी परेशानियो से जव उत्तीर्ण हो गया तो वह मिट्टी की दृष्टि से सस्कारित वन गया, और वहिनो के सिर पर चढ़ गया।

संस्कारित बनने के लिए सहिष्णु बनो !

आज इन्सान अपने मन में क्या अभिलाषा रखता है ? यह कि मैं दुनियाँ का मान-सम्मान ग्रहण करूँ, दुनियां के सिर पर चढ कर दुनिया का वदनीय और पूजनीय बनू । अरे तू आदर और सत्कार के पीछे दीवाना वन रहा है, मान-सम्मान लेने के पीछे भाग रहा है। तू अपने जीवन को देख, तुम्हारा जीवन क्या है, तू मिट्टी के ढेले की तरह है या मिट्टो के घड़े की तरह है ? मिट्टी के ढेले ने तो मान सम्मान की परवाह नही की। मिट्टी के मन में तो यह ध्यान रहा कि मुझे सस्कारित बनना है। संस्कारित वनने में वह अनेक आपत्तियो को सहकर चली तो मिट्टी का सस्कार हो गया। यदि इन्सान को अपना जीवन जीना है, जीवन के प्रश्न को हल करना है कि मेरा जीवन क्या है ? तो सबसे पहले उसे मिट्टी से शिक्षा लेनी चाहिए कि मिट्टी के समान मै निश्चिल, दृढ धैर्यवान वन जाऊँ। मिट्टी पर कुम्हार ने थपेड़े लगाये, मुझ पर भी थपेड़े लगाने वाला कोई आ जाय तो उस समय मै शान्त एव स्थिर रहता हू या नही ? आत्मस्वरूप में लीन होता हू या आत्मा के रूप को विस्मृत कर जाता हू। मै शान्ति को छोड़ता हूं या रखता हू ? यह प्रत्येक व्यक्ति को चिन्तन करना है। यह चिन्तन नही होगा तब तक जीवन सस्कारिक नही हो पायेगा । अरे थपेड़े खाना तो दूर रहा, यदि कोई व्यक्ति दूर खड़े खड़े अगुली उठाकर कह दे, मेरे सामने क्या वोल रहा है, तुम्हारी मू छ का बाल उखाड कर फेक दू गा। इतने शब्द ही उस व्यक्ति को उत्तेजित किये विना नही रहते। और वह व्यक्ति इतना उत्तेजित हो जाता है, कथन मात्र से ही अपने आपे को छोड़ देता है और मानवता को तिलाजलि देकर मुकद्दमेवाजी के लिए तैयार हो जाता है। हालाकि न उसने मू छ के वाल पर हाथ लगाया, न उखाड़ी, फिर भी उसे जोश आ गया।

यह जोश किस बात का द्योतन कर रहा है ? उसी वात का द्योतन कर रहा है। इन्सान मिट्टी का ढेला नही हो सकता है, मिट्टी से वना है, मिट्टी का अश इन्सान है लेकिन मिट्टी की शिक्षा इन्सान मे नही है। मिट्टी कितने गुण रखती है । असस्कारित अवस्था मे भी मिट्टी समभाव स्थिति मे रहती है। इन्सान कहता है, मैं वहुत वड़ा विद्वान हू, मैं वहुत बडा अधिकारी हू, मैं बहुत वडा प्रोफेसर हू, मैं वहुत वडा व्यापारी हू, मैं वहुत वडा वकील हू, मैं बहुत वड़ा वेरिस्टर हू, मै सब कुछ हू। अरे ! सब कुछ है, लेकिन इसके पीछे अपने जीवन का भी कुछ विचार है ? जीवन की स्थिति को भी कुछ समझता है या नही ? इस प्रकार के शब्दो से अपने आपे से वाहर हो जाना अपने स्वभाव को छोड देना, अपनी शक्ति को छोड़कर, सुमति को छोडकर कुमति की ओर चले जाना असस्कारित स्थिति के कारण से होता है।

संस्कारिता का महत्व

मैं मिट्टी की वात ही क्यो कहू, पृथ्वी की प्रत्येक सामग्री, पृथ्वी का प्रत्येक पदार्थ सस्कारिता का प्रदर्शन कर सकता है। लाल भवन मे वैठे हुए है—यह लाल भवन किन तत्वो से वना है ? मिट्टी से वना है। पत्थरो से वना है। मिट्टी और पत्थर कहा से आता है ? मिट्टी खदान मे थी। पत्थर खदान मे था। उस वक्त तक कोई उनकी कदर नही थी। लेकिन वहा से वाहर निकलने पर वजरी वन गई, पत्थर पर टाकी लगाई गई। कारीगर ने पत्थर को खूब छीला और छील-छील कर दीवार मे फिट कर दिया। इससे पत्थर का सस्कार हो गया। दीवार का सस्कार हो गया। ओर लालभवन की स्थिति मे आपके सामने आ गया। लाल भवन ममत्व का पुतला वन गया। आप कहते है—"हमारा लाल भवन।" चाहे व्यक्तिगत रूप से न हो, पर सामूहिक रूप से है। इतना महत्व इसका क्यो वन गया।

परमाणु वही थे। चीज वही थी। लेकिन उनका सस्कार हो गया। यहाँ छाया में बैठे हुए है टीन की, यह टीन कहा से आई ? लोहे से। यह टीन सस्कारित बनी लोहे के ढेले से। लोहे के पत्थर का भिलाई के पास बहुत बडा पहाड खडा हुआ है जिस पर लोग टट्टी-पेशाव करते है। वह लोहे का पत्थर निकलकर भिलाई की भट्टियो मे पहुचा। भट्टियो मे पहुच कर उसने सस्कार ग्रहण किया, टीन क रूप में परिवर्तित हुआ और मनुष्य को छाया देने वाला बन गया। वाह रे लोहे। तू सस्कारित होकर दुनिया को छाया देवे, शान्ति देवे लेकिन मानव नाम धारण करने वाला मनुष्य—वह अपने आपको मानव कहलाते हुए दुनिया को शान्ति देता है या अशान्ति देता है, दुनिया के लिए फूल बनता है या दुनिया के लिए शूल बनता है—क्या मानव ने अपने जीवन में यह सोचा है ? मै आपको इस विषय मे क्या बताऊँ,प्रभु महावीर ने कहा है—सस्कारित जीवन जिस मानव का, बहिन या पुरुष का बन जाता है, उसका जीवन बदल जाता है, जिसका जीवन सस्कारित नही होता है वह चाहे जितनी अवस्था या स्थिति प्राप्त कर ले उसके जीवन में वह दूसरो के साथ भलाई करने वाला व्यक्ति नही बनता। एक अस्सी वर्ष की बुढिया, पैसे की दृष्टि से करोडपति की माता है, लेकिन जीवन की दृष्टि से वह मिट्टी के ढेले से भी गई बीती है। रात और दिन सघर्ष, हाय-हाय। परिवार के सदस्यो मे महाभारत का दृश्य उपस्थित करने वाली। सेठ ने चिंतन किया कि मुझे जीवन के सस्कार मिले है, मै यद्यपि इसी माता की कुक्षी से जन्म लेकर आया हू, फिर भी मै कुछ जीवन के स्वरूप को समझने लगा हू। लेकिन मेरी माता अभी तक जीवन को नहीं समझ पा रही है कि जीवन का क्या मूल्य है। रात और दिन परिवार के सदस्यो को तग कर रही है। घर के अन्दर अशान्ति की ज्वाला सुलग रही है। इस माता का जीवन सस्कारित कैसे बने। पुत्र ने विनीत भाव से माता के चरणो मे नमन करते हुए निवेदन किया, मातेश्वरी ! तू मेरी जननी है। दुनिया मे कहावत है, जननी

जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से वढ कर है। मै तुम्हारी उसी तरह कद्र करता हू। लेकिन तुम्हारा जीवन असस्कारित जीवन चल रहा है। अस्सी वर्ष की हो गई हो लेकिन जीवन मे परिवर्तन नही है। वही पशुपन है, अनाडीपन है। यह कौन सा तुम्हारा जीवन है। मातेश्वरी ! अपने जीवन को सस्कारित करो। अस्सी वर्ष मे जो कार्य किया, उससे निवृत्ति लो और जीवन को माँजने के लिए, सन्मार्ग की ओर जाने के लिए जीवन को सुव्यवस्थित रूप मे ढालो। पुत्र का निवेदन सुनने के पश्चात् माता कहने लगी, छोकरा ! तू नही समझता। मैंने गरीवी के दिन भी देखे हैं। आज तू करोडपति बन गया तो क्या हो गया ! यह पुत्र वधू इस प्रकार की फिजूलखर्ची करती है, यह छोकरे इस प्रकार पैसे वर्वाद करते हैं–यह मुझे बर्दाश्त नही। इसलिए मैं लड़े विना नही रह सकती। पुत्र ने कहा, जैसा करोगी वैसा भरोगी। पुत्र की वात मातेश्वरी ने स्वीकार नही की। तव सेठ ने सोचा, इनके जीवन से अव यह सस्कार जाने वाले नही है लेकिन जिनके कोमल जीवन है, जो अभी बच्चे है, जो तरुण हैं, जो अधेड़ है उनमे फिर भी अच्छे संस्कार उत्पन्न किये जा सकते है। इसलिए परिवार के सव सदस्यो को एकत्रित करके सेठ ने नम्र भाव के साथ निवेदन किया—आप मेरे परिवार के सदस्य है। मेरी आत्मा के तुल्य हैं। मैं आपसे कहना चाहता हूँ, आप अपने जीवन को समझे। यह जीवन असस्कारित जीवन रहता है तो मुझे दर्द होता है। आप अपने जीवन को सस्कारित वनाने के लिए कुछ प्रण करे। विनीत परिवार के सदस्यो ने सेठ की वात को ध्यानपूर्वक श्रवण करने के पश्चात् कहा, आप क्या आदेश देना चाहते हैं ? आपके आदेश का पालन करना पहला कर्तव्य होगा। सेठ ने कहा, यह मेरी माता अस्सी वर्ष की बुढिया है। अपने सव परिवार की मुखिया है। लेकिन इसके जीवन

में जीवन के अच्छे संस्कार नही है, यह हर किसी के साथ लडती झगड़ती है। आप लोग इसके ऊपर रोष न करे, इसकी बात पर ध्यान नही दे। बूढ़े और वच्चे को एक समझ कर माफ करे जिससे घर में कलह का वातावरण पैदा नही हो। सव परिवार के सदस्यो ने अनुशासन के नाते यह स्वीकार किया और घर में शान्ति का वातावरण बन गया। लेकिन बुढिया का असस्कारित जोवन समाप्त नही हुआ। उसने सोचा, परिवार के सदस्य मेरे से लड़ाई नही करते। मुझे लड़ाई किये बिना चैन नही मिलता। वह घर से बाहर निकली, पडौसी के घर पहुची। वहा अपने असस्कारित जीवन का प्रदर्शन किया। उसकी बातो को सुनकर पडौसी के परिवार के सदस्य लड़ने लगे। एक घर में आग लगाई, फिर दूसरे घर में पहुंची। दिन में कई धरो मे पहुँच कर सव के यहाँ लड़ाई झगड़े करा दिये। और शाम को अपने घर में वापिस पहुँच गई। यह उसका प्रति दिन का कार्यक्रम बन गया। असस्कारित जीवन का कितना खराव प्रदर्शन है। नागरिक परेशान हो गये। यह क्या तमाशा है। यह माता करोड़पति की कहलाती है। उनके घर की माता है। हमारे घर में आग लगाने वाली कौन होती है? आग लगाने वाला व्यक्ति बहुत बड़ा पापी होता है। बाहर में आग नही, जीवन में आग जलाने वाला, जीवन में क्लेश पैदा करने वाला समाज के अन्दर शाति की स्थिति को तोड़ने वाला, अशाति पैदा करने वाला, राष्ट्र के अन्दर अशाति की ज्वाला सुलगाने वाला—ये सवके सब महापापियो की श्रेणी में आ सकते है।

नागरिकों का शिष्टमडल सेठ के पास पहुचा। सेठ ने वड़ा सत्कार किया। शिष्टमण्डल सोच रहा था कि यह करोडपति सेठ है, हमे अनादर की दृष्टि से देखेगा। लेकिन सेठ के वर्ताव को बिल्कुल विपरीत पा रहे हैं। सेठ सम्मान कर रहा है हमारे जैसे

का। यह सेठ पूँजी को महत्व नही दे रहा है, जीवन को महत्व दे रहा है। हमारे जैसे निर्धन व्यक्तियो के प्रति भी सम्मान प्रदर्शित कर रहा है, जैसे कि अपने वर्ग के, मुकावले के व्यक्ति को सम्मान देते हो। इस दृष्टि से सेठ का जीवन सस्कारित जीवन है। शिष्टमडल ने अपनी वात रखी और कहा, आपकी मातेश्वरी को आप कुछ कब्जे मे रखिए। यह हमारे घरो मे आग लगाकर हमारे सवके जीवन को विषाक्त कर रही है। सेठ ने कहा, जितने सम्भव प्रयत्न थे वे सब मैंने कर लिये, लेकिन मेरे प्रयत्न सफल नही हुए। आपसे मेरा निवेदन है, आप ही कोई उपाय सुझाये और मेरी मातेश्वरी को समझा दे। उनके जीवन को सस्कारित वना दें तो मे आपका अहसान नही भूलूगा। शिष्टमण्डल उस अस्सी वर्ष की बुढिया के पास पहुँचा। अनेक तरह की शास्त्रीय वातो को रखते हुए समझाने की कोशिश की। बुढिया को सव वाते तो जची, लेकिन उसने उत्तर दिया, आपकी सव बाते अच्छी हैं, भली है, मे समझती हू लेकिन झगडा किये वगैर मुझे खाना हज्म नही होता है।

शिष्ट मण्डल ने सोचा कि अव वृद्धावस्था के अन्दर सस्कार डालना वडा कठिन है। उस बुढिया को कहा मातेश्वरी! यदि लडाई झगडा किये विना आपका अन्न हजम नही होता है तो हम आपके उस रास्ते को खुला रखकर वाकी दरवाजे वन्द कर देते हैं। आप लडाई करने के लिए घर घर के अन्दर पहुचती है, आपको श्रम होता है, हम सब मिलकर आपके लिए एक कमरे का इन्तजाम कर देते है, उसी मे आप गद्दी तकिये पर विराजकर वैठ जावे और वारी-वारी से एक व्यक्ति आपके पास पहुच जाया करेगा और जितनी आपको लडाई करनी है दिनभर आप उस व्यक्ति से लडते रहे। तो उसने कहा कि हाँ यह वात मुझे मन्जूर है क्योकि कोई लडने वाला नही हो तो विना लड़ाई किये मुझे शान्ति मिलने वाली नही है। शिष्ट मडल ने सेठ से निवेदन किया कि अव समस्या

का कुछ हल आ चुका है। आपके घर के अन्दर काफी सदस्य है, एक-एक सदस्य की बारी बांध दी जावे, एक कमरे के अन्दर गादी तकिये डालकर बुढिया को बिठा दीजिए, यह आपके घर की अशान्ति एक ही कमरे मे रहेगी और सारे नगर मे अशान्ति भी नही रहेगी ' सेठ ने कहा कि आपकी आज्ञा शिरोधार्य है लेकिन मेरे परिवार के सदस्यो से यह समस्या हल होने वाली नही है। शिष्ट मण्डल ने कहा कि क्यो ! तो कहा—परिवार के सदस्यो को मैने सस्कार दे दिये है कि बुढिया चाहे कितना ही कुछ कहे तुमको चुप्पी साध लेनी है और कुछ भी उत्तर नही दना है। जैसे वच्चे की बात को सुनकर हसना है उसी तरह से बुढिया की बात को सुनकर हस लेना है। अतः मेरे परिवार के सदस्य उससे लड़ाई नही करेगे उसकी बात को सुनकर हसते रहेगे। तो इससे बुढिया की आग शान्त नही होगी और फिर कमरे से बाहर निकलकर आपके घरो मे पहुचेगी तो आपकी समस्या का हल कैसे होगा। शिष्ट मडल ने सोचा यह भी ठीक है। सेठ के इस प्रकार संस्कारित जीवन का कुछ नमूना देखकर शिष्ट मण्डल ने सोच लिया कि यह सारे नगर की माता हो जानी चाहिए क्योकि इसके पुत्र के इतने संस्कार है कि हमारे साथ सुमति के साथ व्यवहार कर रहा है तो यह उत्तरदायित्व हम सबका है। इस दृष्टिकोण मे उस शिष्टमण्डल ने यह निर्णय किया कि सेठ के घर के सदस्यो को छोड़कर गाव के जितने सदस्य है उनके प्रत्येक घर से एक व्यक्ति की बारी बाँध दी जाये। उन्होने गाव के अन्दर उसी ढग का ऐलान करवाया। वह गाँव विषमताओ की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला नही था। वह परिवार के रूप मे गांव था, सब की समता की स्थिति का प्रदर्शन करने वाला गाव था। आजकल ग्राम पचायतो की व्यवस्था करने के लिए जरूर कुछ किया जा रहा है लेकिन आज की स्थिति मे वस्तुतः ग्राम को परिवार समझने की दृष्टि अभी मानव

मे नही आ रही है । लेकिन उसका कुछ दृश्य इस तरह से अपने परिवार के सदस्यो की वारी बाधकर उस गाव वाले हमारे सामने रख रहे हैं। सयोग से एक संस्कारित कन्या जो कि बचपन से अपने जीवन के स्वरूप को समझकर जीवन को सस्कारित करके चलने वाली थी, सुसराल मे पहुची। सासु और स्वसुर को नमस्कार भी किया और उसके परिणाम हेतु शुभ आशीर्वाद चाहा था। उसने अपने प्रफुल्लित नैनो से सासु की आकृति को देखा और सोचने लगी कि मेरी सासुजी के मुँह से आज मेरे लिए सुन्दर आशीर्वाद आयेगा क्योकि मैं इस घर के अन्दर नवीन पुत्रवधू के रूप मे परिवार के नवीन सदस्य के रूप मे उपस्थित हुई हू। लेकिन उस कन्या ने देखा सासुजी के मुँह से आशीर्वाद के कोई वचन नही निकल रहे थे वल्कि आकृति मे थोड़ी सी म्लानता थी। उस चतुर मनोविज्ञान की ज्ञाता, जीवन को सस्कारित करने वाली कन्या ने सासुजी से प्रश्न किया कि सासुजी, आज मेरा इस परिवार के सदस्य के रूप मे आना आपको अच्छा नही लग रहा है? मैं यह जानना चाहती हूं कि किसी भी परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन में प्रफुल्लता आये बिना नही रहती। लेकिन आज मैं इसके विपरीत देख रही हू, क्या कारण है? आपको उदासी का क्या हेतु है। आप स्पष्ट बताये? उसने जो आजकल की प्रचलित प्रथा थी उनको भी हटा दिया। सासुजी ने पुत्रवधू के वचनो को महत्व दिया और कहा कि बीदनी जी;तुम्हारे आने से उतनी ही प्रफुल्लित हू जितना कि होना चाहिए और जो चिन्ता का रूप आप देख रही हो वह तुम्हारे कारण नही है, उसका अन्य कारण है। वहू ने पूछा कि वह कौन सा कारण है जबकि मैं परिवार की सदस्या बनी हू तो परिवार के ऊपर आने वाली हर विपत्ति के अन्दर मेरा भी हाथ बटाना कर्त्तव्य है। कौनसी ऐसी कुमति का साम्राज्य छा गया

आपको मन को जो कि कोमल कमल के समान है मुरझा गया। आप स्पष्ट कहे मेरे से बन सकेगा तो मैं उसमें भाग लूंगी। सासुजी ने स्पष्ट शब्दो मे कहा और सारा वृत्तान्त सुनाया कि करोडपति सेठ के यहा इस तरह से असस्कारित वृद्धा माता का गाव के लोगो के साथ व्यवहार है और व्‌ा बारी बारी से प्रत्येक परिवार से एक एक सदस्य रोज जाने का निर्णय हुआ है मेरे घर के सदस्य के जाने का आज प्रसग है और यह सदस्य पहुचा तो वह बुढिया चाहे वह ८० वर्ष की है लेकिन उसका जीवन मिट्टी के ढेले से भी गया बीता है और इतने अपशब्द वह परिवार के लिए प्रयोग करेगी कि जो कम से कम आज हमको अभीष्ट नही है। हम चाहते है कि आज तुम्हारी सरीखी संस्कारित कन्या हमारे परिवार में आई यह हमारे परिवार के लिए मगलमय प्रसग है अतः हमारे परिवार के लिए अमगल सूचक शब्दो का प्रयोग नही हो इस भावना से मेरे मन मे ग्लानि आ रही है कि मै क्या करूँ। इस बात को सुनकर वह कन्या जो नवीन पुत्रवधू के रूप में परिवार में उपस्थित हुई, उसके जीवन के अन्दर उच्च जीवन के सस्कार थे। अपने जीवन को माजने की दृष्टि से वह चल रही थी और सुमति की पाठशाला मे भी वह प्रवेश पा चुकी थी इसलिए उस कन्या ने प्रफुल्लित नैनो के साथ मधुर स्वर में कहा सासुजी, यह कार्य जितना आपका है उतना ही मेरा भी है, आप चिन्ता मत कीजिए। मेरे लिए आप मगल कामना करती है यह मेरे सौभाग्य की बात है लेकिन मेरा मगल मेरे हाथ मे है, मैं अपने जीवन में सुमति और सुमति के साथ जीवन के सस्कारो को लेकर चल रही हूं इसलिए मेरा कोई अमगल होने वाला नही है—आप इस विषय में निश्चित रहिये और यदि आपके घर की बारी है तो आज मेरा ही नम्बर लगा दिया जाये। बन्धुओ, मैं क्या बताऊँ—कहां एक ८० वर्ष की बुढिया और कहा एक तरुणी जो कि नव पुत्रवधु के रूप में

परिवार मे प्रवेश करती है और अमगलकारी शब्दो को मगल में परिणत करने के लिए कैसी भावना व्यक्त कर रही है आप थोडा अपने जीवन को टटोले और थोडा सा प्रश्न का हल करने के लिए अपने आपको तैयार कीजिए।

[कथा के आगे का अश अगले प्रवचन मे चालू है। कृपया प्रवचन सख्या ३ देखे। —सम्पादक]

लाल भवन
२१ जुलाई १९७२





सस्कारी जीवन विश्व उपवन का मधुर सुवास से भरा वह पुष्प है, जो प्रतिपल चारो ओर सुगन्ध ही सुगन्ध फैलाता है।

विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिउं

—उत्तराध्ययन

विवेकज्ञान से ही धर्म के साधनो का निर्णय हो सकता है।

---

३ | जीवन का स्वरूप

पद्‌म प्रभु पावन नाम तिहारो,
पतित उद्धारन हारो।
पद्‌म प्रभु पावन नाम तिहारो।
जदपि धीवर भील कसाई,
अति पापिष्ट जमारो।
तदपि जीव हिंसा तज प्रभु भज,
पावे भवनिधि पारो।

यह पद्‌म प्रभु की प्रार्थना है। प्रार्थना की कड़ियो मे प्रभु के नाम को पावन की सज्ञा दी है। ऐसे तो पद्‌म नाम कईयो का हो सकता है किन्तु कवि ने जिस सज्ञा वाचक शब्द को कविता मे समन्वित किया है। उसका आशय है कि उनका नाम पावन और पवित्र है, पतितो का उद्धार करने वाला है। पतित कौन हैं ? कवि



गुरुदेव ! तुम्हे शतशत वंदन
स्वीकार करो यह अभिनन्दन

आचार्य श्री नानालालजी म०

के

जयपुर चातुर्मास

के

पावस प्रवचन हमें
सतत मार्ग दर्शन
करते रहे।



सरदारमल उमरावमल ढड्ढा

जौहरी बाजार, जयपुर-३

ने धीवर, भील और कसाई की ओर संकेत किया है। आप जानते हैं इन लोगो का धन्धा क्या है? पापयुक्त है। ये पाप-युक्त जीवन विताने वाले होते हैं। वे भी हिंसा का परित्याग करके यदि आपके नाम का स्मरण करें तो उनका भी उद्धार हो जाये। कवि ने इसकी लम्बी चौडी सूची दी है। गौ की हत्या करने वाला, ब्राह्मण की हत्या करने वाला, स्त्री की हत्या करने वाला ये बड़ी हत्याएं मानी गई है, इन हत्याओ को करने वाले आपके नाम की स्तुति को समझ लेते तो ये भी अपने जीवन का उद्धार कर पाते।

शब्द-रचना की दृष्टि से अर्थ सरल-सा झलक रहा है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो इन शब्दो के अंदर गहनता है। वह गहनता तर्क के साथ व्यक्त की जाती है। आज का युग तर्कप्रधान युग है। सिर्फ आस्था से आज के युग का काम चलने वाला नहीं है।

जब मानव यह सुनता है कि प्रभु का नाम पावन है और पतित का उद्धार करने वाला है तो सहज ही एक तर्क पैदा होगा कि पापिष्ठ जीवन से सरलता से छुटकारा पाने का यह सुगम उपाय बन गया। दिन भर कितने ही पाप करते रहो, दुनिया भर की लूट-खसोट करते रहो, दुनिया को सताने वाले जितने कार्य बन सकें किये जायें और सन्ध्या के समय प्रभु के नाम का स्मरण कर लिया जाये तो हमारे सारे कुकृत्य नष्ट हो जायेंगे। यह कितना सस्ता उपाय है? फिर अन्य किसी उपाय की आवश्यकता ही नहीं रहती है। किन्तु नाम लेना सरल है। मुँह, जुबान हिले, हाथ में माला लेकर फेर लो इतना सरल अर्थ समझ कर व्यक्ति इसको प्रमुखता देता है किन्तु इसका इतना सरल अर्थ नहीं है। शब्द वर्ण से बनते हैं। यह तो एक दृष्टि से जड़ तत्व है। इसके अंदर पवित्रता का आरोप करें या अपवित्रता का, दरअसल शब्दों के माध्यम से वाञ्छित अर्थ निकाला जा सकता है। शब्दों

साथ साथ प्रभु का स्मरण हो आता है। विशिष्ट शब्दो के उच्चारण से भगवान का अत्यन्त उज्ज्वल जीवन सामने आता है और उसका जब मन के ऊपर स्पष्ट प्रतिबिम्ब पडने का प्रसंग आता है तब मन में भी पवित्रता का सचार होता है।

हृदय से भगवान का पावन नाम लेते है तो जिह्वा और अंत:करण भी पवित्र हो जाते है उस पवित्र नामोच्चारण से मन मे या अन्त:करण पर रहने वाली हमें धुंधुलती हुई परिलक्षित होगी। यह मन रूपी कपडा सासारिक कार्यो से दुर्गन्ध युक्त बना हुआ है। उसमे झूठ, छल, प्रपच और न मालूम कितनी ही बुरी वस्तुएँ क्रीडा कर रही है और सारे मन रूपी कपडे को गदा बना रही हैं। इस गन्दे कपड़े के ऊपर यदि आप पद्म प्रभु भगवान के नाम का पवित्र अर्थ दो क्षण के लिये भी टिका लेगे तो आपके मन मे सुगन्ध रूपी आध्यात्मिक शान्ति का प्रभाव बना रहेगा। जितने क्षण आपका ध्यान प्रभु के सीधे स्वरूप की ओर होगा। तब तक वहा बाहरी वस्तुओ का प्रभाव मन्द होगा, कुसस्कार नष्ट हो जायेगे। यह स्थिति निरन्तर मन की बनी रही तो सारी दुर्गंध साफ होकर जीवन पावन और पवित्र बन जावेगा।

जो लोग समझते है कि दिन भर पाप करे और शाम को भगवान का नाम ले ले तो पाप से छुट्टी मिल जावेगी। उन लोगो के मन मे ये विचार बैठे हुए हैं कि शाम को भगवान का नाम लेने से दिन भर के पाप नष्ट हो जावेंगे किन्तु ये विचार तथ्यपूर्ण नही है इस प्रकार के विश्वास से जीवन मे पुनीत सस्कारो का आगमन नही होगा।

हमारा सारा जीवन वीतराग देव की वाणी के अनुसार सुसस्कारित हो यह तभी सम्भव है। उस जीवन को सुसस्कारित करने के लिये हम अपने जीवन के पापो को छिपावें नही। दुर्गन्ध को छिपाने की कोशिश न कर बल्कि उसे बाहर करें। दुर्गन्ध को

सूर्य की किरणो के सामने विखेर दे, दुर्गन्ध उड जावेगी और वस्तु का वास्तविक स्वरूप सामने झलकने लगेगा।

गंदगी को दबाओ मत

आप जानते है, व्योपारी जब अपनी दुकान पर वैठता है और कचरा निकालने का प्रसग आता है तो वह रुपया पैसा नोट और कोई वढिया चीज है तो गद्दी से उनको उठाकर तिजोरी मे रखेगा और कचरे को झाडकर, दुकान से वाहर फेंकेगा। यह तो प्रचलित पद्धति है। लेकिन कदाचित् किसी व्यापारी के दिल मे यह आ जाय कि सोने चांदी, रुपये नोट है, उनको तो उठाकर वाजार मे फेंक दें और जितना कूडा करकट है उसको इकट्ठा करके, या तो गद्दी के नीचे दवा दे या तिजोरी मे रख दें। यदि ऐसा वह करने लग जाय तो उस व्यापारी को क्या कहेगे? वेवकूफ और मूर्ख ही तो कहेगे?

हम इस जीवन की दुकान पर भी वैठे है। क्या हमने अपने जीवन के स्वरूप को भी समझा है। प्रश्न वही है, "किं जीवनम्" जीवन क्या है? क्या इस प्रश्न पर आपने कुछ चिन्तन किया है? इस जीवन की दुकान पर वैठकर आप कूडे करकट कचरे को वाहर फेंक रहे हैं या उसको जाजम के कोने नीचे के दवा रहे हैं? इसका तात्पर्य यह है कि इस जीवन के अन्दर कूड़ा कर्कट गदगी भरी हुई है। इस गदगी को इन्सान वाहर फेंकना नही चाहता है। नयी नयी गदगी पैदा हो जाती है तो भी उसको छिपाने की कोशिश करता है और सद्गुण रूपी वहुमूल्य रत्नो को वाहर फेंकने की कोशिश करता है। जीवन के अन्दर पाप की वृत्ति आयी, मनुष्य ने पाप किया और पाप करना स्वाभाविक भी है। परन्तु पाप करने के वाद मे पाप को पाप कहने की ताकत भी उनकी जवान मे नही आती है। प्रकारान्तर से वह पाप प्रकट भी हो जाय तो भी मनुष्य चा-गा कि पाप प्रकट

न हो और इस पाप को छिपा कर तथा दवाकर रखता रहू। ऊपर से लेबल ऐसा बता देता है कि दुनिया मुझे भला आदमी समझती रहे। कदाचित् किसी सयोग से अपने जीवन से शुभ काम वन जाता है, मार्ग में जाते हूए किसी गिरते हुए प्राणी को सहारा देकर वचा लेता है, तो वह मन में फूला नही समाता है और सारी जगह वात कहता फिरता है कि मैंने ऐसा किया, और जिस व्यक्ति को सहारा दिया यदि वह व्यक्ति कभी कोई वात कहे तो वह उलट कर कहेगा कि मैंने तुमको मरते हुए को बचाया था। वह दुनिया भर मे उसका ढिढोरा पीटेगा और इस छोटे से शुभ कर्तव्य से अपनी गंदगी को नीचे दबायेगा। इस के विपरीत जो व्यक्ति सद्गुण रूपी शक्तियो को तिजोरी मे बन्द रखता है कूडे कर्कट को बाहर फेंक देता है, तथा प्रभु के नाम का श्रवण करता है तो वह नाम उसके जीवन को पावन करने वाला वन जावेगा। यदि ऐसा नही किया तो प्रभु का नाम हजार हजार बार ले, लाखो-करोडो वार ले, वह प्रभु का नाम पवित्र पावन करने वाला नही वनेगा। इन पवित्र कडियो को जीवन के साथ जोड़े और जीवन को सामने रखकर इसके स्वरूप को समझने की कोशिश करे तो यह सव सम्भव है।

प्रभु महावीर ने ढाई हजार वर्ष पहले जो उद्घोषणा किया वह यही था .

असखय जीविय मा पमायए।
जरोवणीयस्स हु नत्यि ताण ॥

हे मानव ! तुम्हारा जीवन असस्कारित चल रहा है। प्रमाद मे क्यो पडे हो, जीवन को इधर उधर क्यो भटका रहे हो। आप विचार करिये असंस्कारित जीवन क्या है हमारा प्रश्न क्या है ? जीवन के साथ सस्कारित और असस्कारित शब्द जुडे हुए है। असस्कारित जीवन की और सस्कारित जीवन की अनेक विद्वान् परिभाषा करते है, जीवन को तोलने की कोशिश

करते है लेकिन वास्तव मे जीवन की परिभाषा परिपूर्ण रूप से क्या है ? "किं जीवनम्" जीवन क्या है। कुछ विद्वान् उत्तर देते हैं कि **"दोष विर्वजितम् यद् तज् जीवनम् ।"**

दोष से विर्वजित है वही जीवन है। जो दोष से रहित है, वह जीवन है इस सामान्य परिभाषा मे कुछ दार्शनिक दृष्टि से अति-व्याप्ति दोष की सभावना है । यद्यपि अतिव्याप्ति दोष, अव्याप्ति दोष और असभव दोष, ये तीनो न्यायिक क्षेत्र के, दर्शन क्षेत्र के लक्षण हैं। यह दार्शनिक सभा नही है। यह तो धर्म जिज्ञासु सभा है। यद्यपि धर्म सभाओ के बीच मे ये दर्शन सम्बन्धी बाते थोडी कठिन पडती हैं परन्तु फिर भी आज का जो समाज है, आज का जो मानव है वह इस कठिन तत्व को भी ग्रहण करने का प्रयास करता हैं। आज मनुष्य के मस्तिष्क का विकास इतना हुआ है कि वह बारीक से बारीक चीज को समझने का प्रयास करता है। इसलिये जब तक आप जीवन को बारीकी को न समझेगे तब तक उसके निखालिस रूप को नही समझ पायेगे।

जीवन का लक्षण

आपका प्रश्न, नही तो मेरा प्रश्न है "किं जीवनम्" जीवन क्या है ? जब इसका लक्षण बताया जावेगा कि अमुक तरह का जीवन अमुक तरह के जीवन का लक्षण है। तो वह लक्षण यदि दोषयुक्त बन गया तो सही लक्षण नही समझा जा सकता। और यदि दोष रहित लक्षण है तो वह सही लक्षण है। उदाहरण स्वरूप जीव का लक्षण ले। यदि कोई पूछे कि जीव का लक्षण क्या है ? तो उसका उत्तर हैं कि जीव का लक्षण उपयोग है **"जीवो उवओग लक्खणो"** यह शुद्ध लक्षण है, क्योकि इससे रहित कोई जीव नही होता तथा सभी जीवो मे उपयोग लक्षण है। इसके विपरीत जीव का लक्षण यह माना जाय कि पञ्चेन्द्रिय हो वह जीव है। तो यह सभी जीवो

में नही जा सकता पञ्चेन्द्रिय से आप क्या समझते हैं ? पांच इन्द्रियां ये हैं- कान, आख, नाक, मुँह और शरीर। यदि हम कहें कि पाँच इन्द्रियों वाला ही जीव है तो जिसके चार इन्द्रियां है, तीन इन्द्रिया हैं क्या वह जीव नही है ? दो इन्द्रियां हैं तो क्या वह जीव नही ? एक इन्द्रिय है तो क्या वह जीव नही ? अतः जीव मात्र का पंचेन्द्रीयत्व लक्षण बताना यह जिस प्रकार दोषपूर्ण है उसी प्रकार जीवन के विषय में एक विद्वान ने कहा है—**"दोष विवर्जितं यद् तद् जीवनम्"** दोष से रहित है वह जीवन है। यह भी दोषपूर्ण लक्षण है।

मैं यहाँ आपको बतला रहा हूं कि जीवन का सही लक्षण क्या है। इस प्रश्न के उत्तर में जब यह कहा जाय—**"दोष विवर्जितं यद् तज् जीवनम्"** इस पर यदि उपर्युक्त तरीके से विचार करें तो यह लक्षण कहा तक शुद्ध है ? इसकी परिभाषा के साथ आपको थोडा सा बारीकी से चिन्तन करा रहा हूं। यह लक्षण शुद्ध नही है। **'दोषविवर्जितं यत् तद् जीवनम्'**—दोष रहित जीवन यह लक्षण जा सकता है। पर साथ ही जीवन रहित तत्व मे भी यह चला जाता है। इस परिभाषा के अनुसार यदि दोष रहित परमाणु हो तो वह जीवन कहला सकता है।

शास्त्रीय दृष्टि से धर्मास्तिकाय दोष रहित है तो उसको भी जीवन कहना पडेगा पर धर्मास्तिकाय मे जीवन कहा ? तो यहा पर घोटाला हो जायेगा। इसलिये जीवन की उपरोक्त परिभापा शुद्ध नही कही जा सकती। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय व आकाशास्तिकाय भी अपने आपमें दोप रहित है। जीवन की उपर्युक्त परिभापा के अनुसार इन्हे भी जीवन समझ लिया जायगा—पर वे तो जड़ हैं। अत यह लक्षण अतिव्याप्ति दोपयुक्त वन जाता है। इसमे जीवन के पूरे लक्षण नही आ रहे है। जीवन के शुद्ध लक्षण को पहिचानने के लिये मैं आपके सामने वह चीज रख रहा हूं—शुद्ध लक्षण को जानने के लिए आपको अपना जीवन सस्कारित करना है,

सस्कारित जीवन के साथ लक्षण को समझने का प्रयास करेंगे तो समक्ष में आयेगा और वुद्धि का निखालिश रूप सामने आयेगा। इस वारीक वात को समझने का प्रयास कर रहे हैं। सस्कार किस रूप मे कर रहे हैं। आप कह दें—महाराज, आदिवासी की तरह हम थोडे ही हैं। हमारा जीवन तो सस्कृतिमय है। हमारे जीवन की गति तेज है। हम अपनी वुद्धि, से कहा से कहा पहुच गये हैं, कहा कहा पर दौड रहे है। कितनी पेनी वुद्धि, सूक्ष्म दृष्टि हमारे पास आ गई है—क्या यह हमारे जीवन का सस्कार नही हैं? क्या आप इसको सस्कार नही मानेंगे? यह आप तर्क दे सकते है। मैं इस तर्क के पीछे आपको चिन्तन देना चाहता हू। आप स्वय सोचिये। आज का इन्सान अपनी वुद्धि का परिमार्जन करके चल रहा है, यह अवश्य है कि आदि युग का जो मनुष्य था, उसकी जो प्रतिभा थी, उसका जो चिन्तन था, उसके रहन-सहन की जो पद्धति थी, जिस प्रकार से वह रहता था उसमे और आज मे रात दिन का अन्तर आ गया है। कहा आदि युग का मनुष्य और कहाँ आज का मनुष्य।

इसलिये आप गभीरता से चिन्तन कीजिये। मैं सिर्फ आप लोगो को ही नही, वुद्धजीवी वर्ग को, विद्वान लोगो को सम्वोधन कर रहा हू कि वे अपने दिल-दिमाग मे सोचे, चिन्तन करे कि आज का यह जीवन वस्तुत सस्कारित है। आप चिन्तन करेंगे तो अनुभव होगा कि वास्तव मे यह जीवन सस्कारित नही है। विज्ञान से भौतिक तत्वों की और वौद्धिक शक्ति की भी वृद्धि हुई है। मानव विद्युत गति से दौड रहा है, परन्तु जीवन के इस प्रश्न को ढूंढने के लिये, इस प्रश्न को हल करने का क्या प्रयास किया जा रहा है? इस स्थिति के साथ मैं आज यह वता रहा हू कि आज जितनी विकास की स्थिति है उस पर आप सोचे कि क्या यह आपके जीवन का सस्कार है? क्या आपके जीवन के अन्दर उसने शान्ति मिलती है। जितना वुद्धि का विकास हुआ है उसके साथ ही साथ आपके जीवन को शान्ति

मिली है, शान्ति बढी है ? नहीं, अशान्ति बढी हैं। बुद्धिजीवी वर्ग का जिस तरह से विकास हुआ है उसमें आप बिलकुल सही तौर पर, अपने अन्तर पर हाथ रख कर पूछिये कि शान्ति मिली है कि अशांति ? अशान्ति। बड़े से बड़े जौहरी से पूछिये ? आपने जवाहरात के अन्दर तरक्की की है लेकिन क्या उससे जीवन के अन्दर शान्ति मिली है ? यदि उससे जीवन के अन्दर शान्ति का सस्कार नहीं है तो समझना चाहिये कि वह जीवन वस्तुतः सस्कारित नही हो पाया है। आज जो सस्कार है वे कुछ और ही है। वास्तविक जीवन के संस्कार कुछ और ही है।

संस्कारों का चमत्कार

जिस जीवन मे छोटी चिनगारी-सा सस्कार आ जाता है वह जीवन कैसा चमत्कार दिखा सकता है, इसके लिये थोड़ा रूपक कल अधूरा छोड़ गया था। एक तरफ ८० वर्ष की बुढिया जिसने वाल बच्चो का पोषण किया, पोते पड़ पोते देखे और उनसे उसका सारा घर भर गया। कितना विकास कर लिया। क्या उसने जीवन का सस्कार किया है ? जीवन में यह सब कुछ किया,घर को परिवार से कितना भरा पर उस बुढिया को शान्ति कितनी मिली ? एक तरफ एक तरुणी जो अभी नव विवाहिता है, विवाह करके ससुराल आई है। जब उसके सामने यह जटिल प्रश्न आया, उस प्रश्न को लेकर वह प्रथम आती है और देखती है सासुजी अशान्ति के झूले में झूल रही हैं वे सोचती रही वह बुढिया उसके साथ अपशब्दो का प्रयोग करेगी, अमगलकारी शब्दो का प्रयोग करेगी आदि। तो वह नवविवाहिता कहती है कि सासुजी, आज आप यह क्या सोच रही हैं; कि क्या आपके परिवार के लिए अमगलकारी शब्दों का प्रयोग कर देने से वह परिवार उसमें परिणित हो जायेगा। यह सोचना आपका गलत है। यदि अमंगल शब्दो से सीधा किसी के ऊपर आक्रमण होता हो तो अमगल

शब्द आज दुनिया के अन्दर गूँज रहे है, गाली गलौज देने वाले दुनियाँ मे कितने हैं और कितने गाली गलौज दे रहे हैं। आज विज्ञान ने शब्दो को दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने पर पहुचा दिया है और एक कमरे के अन्दर बैठकर दी जाने वाली गाली सारे वायुमण्डल में फैल रही है वह किस मनुष्य से छिपती है। तो क्या हर मनुष्य ऐसे अमगलकारी शब्द से अमगल रूप बन जायगा। वह छोटी अवस्था वाली तरुणी सासूजी से कहती है, सासूजो आप इस विषय की चिन्ता मत करिये। ऐसे अमगलकारी शब्द मेरे जीवन को चिपकने वाले नही हैं। ये आपके जीवन और आपके परिवार के लिये अशुभ नही बन सकते। किन्तु यदि आप इनको पकडने की चेष्टा करेंगे, आप इनको अपने मन मे स्थान देगे तो अमगलकारी कार्य हो सकते है। यदि इनको जीवन मे स्थान नही देंगे, जीवन के अन्दर इस पर पश्चाताप नही करेंगे तो कुछ विगडने वाला नही है। आप इसके लिये अनुमति दीजिये मै स्वय आज उस मातेश्वरी के पास पहुँचती हू। इस तरह उसने अपनी भावना को व्यक्त किया। सासूजी उससे कहने लगी, बहू रानी अभी-अभी तुम इस घर मे प्रवेश कर आई हो तुम्हारा जीवन कोमल है, तुमने दुनिया की ऊँची-नीची स्थिति अभी नही देखी है, अभी यह जीवन की कोमल अवस्था है। मेरे सामने इस प्रकार के शब्द कहना सहज है क्योकि अपने पिता से तुमने यह सस्कार पाया है और उसी दृष्टि से तुम यह यह बोल रही हो, परन्तु जिस वक्त उस बुढिया के सामने जाओगी जो एक विकराल रूप लेकर प्रस्तुत होती है तो तुम घबरा जाओगी और तुम कही घबरा कर दूसरी स्थिति पैदा न कर दो।

सासुजी के इन शब्दो को सुनकर पुत्र वधू मुस्कराई। कहने लगी, सासूजी, परीक्षण के तौर पर मुझे भेज दीजिये। मैं यह चाहती हू कि अति स्नेह के साथ मुझे आशीष दे। सासुजी ने आज्ञा दी, और वह घर से बुढिया के पास जाने लगी। उसने सोचा, मैं जाकर

निष्क्रय बैठ जाऊँगी तो मेरे मन में व्यर्थ का पाप का कचरा इकट्ठा होगा इसलिये कुछ न कुछ कार्य हाथ मे लेकर जाना चाहिये। इस दृष्टि से हाथ का चर्खा, कातने की पूनी, सब साधन लेकर पहुंची। जब बुढिया के द्वार पर जाकर यह कन्या खडी हुई, तो कुछ बिलम्ब हो गया था। इस बिलम्ब की स्थिति से बुढिया तमतमा उठी और बच्ची को देखकर पहले ही स्वर मे उस बुढिया ने कहा, अरी राड इतनी देर से आयी। आप सोचिये नवीन पुत्र बधू को कोई राड शब्द से पुकार ले। मैं समझता हूँ कि बन्दूक की गोली का असर जितना नही होता है उतना उसका असर होता है। परन्तु जिसके मन मे सुसस्कार है उसके मन को इस प्रकार के शब्द भेदते नही हैं किन्तु सुसंस्कार उसके सुरक्षक बन जाते हैं। एक भोडल पत्थर होता है जिसके पट के पट उतरते चले जाते है। उस पर बन्दूक की गोली का असर नही होता है। क्योकि वह स्वच्छ भी होता है और उसके पट भी कुछ कठोर होते है। जिस जीवन में सस्कारो के पट भोडल के समान हो गये है उसके सामने 'राड' जैसे शब्द भी आ जाय जो बन्दूक की गोली के तुल्य है तो भी उसके जीवन पर उनका कोई असर नही होता है। बुढिया को वह नव युवती मुस्करा कर उत्तर देती है, सासु जी राज! आपका परिचय प्राप्त करने मे थोड़ा बिलम्ब हो गया। मुझे क्षमा करिये, अब मैं आपके सामने उपस्थित हो गयी हूँ।" ऐसे कोमल शब्दो से उसने उसको सम्बोधन किया और चर्खा लेकर बैठ गयी। उधर उस बुढिया के मुख से गालियो की वर्षा होने लग गयी। लेकिन वह वहन मस्ती से अपना कार्य कर रही है, और अपने मन मे एक भी शब्द को स्थान नही दे रही है। सोच रही है कि किसी की ऐसी आदत होगी। वह अपना कार्य करती रही। बुढिया बहुत देर तक वोलती रही। वीच में बोलने वाला मिल जाता है तो उसको अधिक समय

तक बोलने की और लडने की ताकत मिल जाती है। जैसे कहा है

देते गाली एक हैं, पलटे गाल अनेक,
जो गाली पलटे नहीं तो रहे एक की एक ॥

कोई गाली गलोज दे रहे हैं तो देने दीजिये उसका उत्तर मत दीजिये वह गाली एक की एक रह जावेगी किन्तु यदि उत्तर मे पुनः गाली दी गई तो अनेक हो जावेगी। उस वहिन ने बुढिया की गालियो का कोई उत्तर नही दिया। बुढिया बोल-बोल कर थक गयी। उस नवीन पुत्र वधू ने सोचा कि आज का कार्यक्रम पूरा हो गया। उसने सरलता के साथ प्रश्न किया— सासुजी! आपका कार्य पूरा हो गया? इतना कहते ही तो बुढिया फिर बकने लगी और लडती रही। दो तीन तरह के प्रसग आये आज वह बुढिया न पानी पी सकी और न शान्ति से अन्न ग्रहण कर सकी। वह बोलती रही। उसके मस्तिष्क मे गर्मी चढ गयी। मस्तिक की कोशिकाओ पर बडा बुरा असर पडा। खून की नाडियो पर विपरीत असर पडा। और वह बेहोश होकर गिर पडी। लेकिन सस्कारित जीवन वाली उस तरुणी पर कोई असर नही हुआ। वह सोचती है, 'यदि मैं इन शब्दो को ग्रहण करूँगी तो मेरे पर इनका असर होगा। अन्यथा नही। उसका सोचना भी तथ्य युक्त है बडे बडे बाजारो मे दुकानें लगती है, हाट लगती हैं। यहां शायद जयपुर मे तो न लगती हो? गांवो मे तो लगती है। मैंने सुना है यहां भी लगती है। तरह तरह के व्योपारी माल असबाव लेकर आते हैं। इनमे जूते के व्यापारी भी आते हैं और जोडे के जोडे उठा कर जाने वालो को बताते है 'एक दूँ या दो दूँ।' कदाचित आप भी उस बाजार मे निकल जाओ तो आपको भी कह देगा। क्या आप उस समय उससे लडोगे? क्या सोचेंगे? आप यह सोचोगे कि यह इसका व्यापार है। क्या करे बेचारा जो चीज है वह बता रहा है। मुझे वह चीज नही चाहिये

इन्कार करोगे कि भाई मुझे नही चाहिये। जैसे उस व्यापारी का पैसा व्यापार समझ कर आगे वढ जाते हैं उसी तरह मानव समाज का हाट लगा हुआ है और प्रत्येक आदमी कई चीजे लेकर बैठा है। असस्कारित जीवन है तो उसके पास उस तरह की चीजे है वह उनको लेकर बैठा है। कोई आदमी उधर से गुजरता है तो वह उनको वही देता है जो उसके पास है किन्तु जो सस्कारित है वह अपने मस्तिष्क को नियत्रित रखता है और यह सोच लेता है कि इस भाई के पास इन्ही चीजो का व्यापार है अतः यही वस्तु देगा। मुझे इनकी आवश्यकता नही है। मैं न लूँ वह असस्कृत व्यक्ति हजार गालियाँ दे तो क्या हजार अपमान सूचक शब्द बोलता है तो क्या। वह व्यक्ति अपने मस्ति·क को नियन्त्रण मे रखता है और किसी प्रकार की विकृति, अपने मस्तिष्क में प्रवेश नही करने देता है। मैं समझता हूँ कि आपके मस्तिष्क में उसी प्रकार भी विकृति प्रवेश नही करेगी। लेकिन ये तत्त्व अपनाने से आ सकते है। विना अपनाये नही आ सकते।

हा तो, वह कन्या यह सोचे कि मरे तो मरने दो, अच्छा हुआ। उठाओ मत सहज ही मर रही है, मुझे ऐसी गालिया दी। किन्तु यह असंस्कृत मन की वात है। जो भाई सुसस्कारित जीवन वाला है वह यह सोचेगा कि यह भाई मूर्छा मे पडा है और मै सचेष्ट हू। यदि आप जीवन को समझना चाहते हैं तो सवसे पहले आपका कर्त्तव्य है कि दुश्मन के प्रति भी शान्ति की कामना करे और उसको उठाव।

बुढ़िया गाली बकती-बकती मूर्छा खाकर गिर पडी। यह देख कर वह तरुणी उठी। उसके मन में तो अपार करुणा भरी थी उसने चर्खे को एक तरफ रखा और बूढी माजी को गोदी में उठाया, अपने घुटने पर उसके मस्तिष्क को रखा, पानी का छीटा दिया और पवन करके उसको सचेष्ट की। दिन भर की थकी हुई

बुढिया ने जैसे ही नेत्र खोले। उसकी दृष्टि उस बालिका की ओर गिरी जिसके नेत्रो से अमृत का झरना बह रहा था, जिसके नेत्रो से आन्तरिक सद्भावना और सद्गुणो की अमृत वर्षा हो रही थी, उस प्रेम मयी वृत्ति को देखकर बुढिया चकित हो गयी। सोचने लगी, कहा मेरी ८० वर्ष की जिन्दगी और कहा १६ वर्ष की तरुणी का जीवन। कहा इसका जीवन और कहाँ मेरा जीवन ? किस प्रकार मैंने अपना जीवन खत्म कर दिया। आज मैं किस प्रकार इसके साथ पेश आयी, किस प्रकार मैंने इसको गालियाँ दी और किस प्रकार मैंने इसको अपमानित किया लेकिन इसने अपने मन पर उसका कोई असर नही होने दिया। यह देवी है, यह भगवती है। इसको किस प्रकार सम्बोधित करूँ। उस बुढिया के मन मे परिवर्तन आता है। बडे बडे लोगो के प्रयासो से भी परिवर्तन नही आया किन्तु इस बहिन के मूक भावो से आज इसमे परिवर्तन आ गया। अन्दर के कलुषित भावो को सद्वृत्ति के द्वारा बाहर फेंकने लगी और अपनी वृत्तियो को प्रकट करने लगी।

कहने लगी हा, हा, अरे देवी ! कैसा मेरा जीवन है। मैंने अपने जीवन मे पाप ही पाप कमाया है। मैं कैसे इस जीवन मे उत्तीर्ण हो सकती हू।" बुढिया उसके चरणो में लोट पोट हो रही है। उसके चरण पकडकर सिसकिया भर कर रोती है और पाप की आलोचना करके अपने आपको शुद्ध कर रही है। कौन कर रही है ? वही बुढिया। अभी-अभी मैंने एक व्यापारी का उदाहरण दिया था जो कचरे को बाहर फेंकता है और रत्नो की रक्षा करता है। आज वही कलंकारित बुढिया पदम प्रभु के पावन शब्दो के माध्यम से—

तथा उस बहिन के माध्यम से अपने कर्कट रूप अशुद्ध जीवन का परिमार्जन कर रही है। बुढिया ने सदा के लिये गाली गलौज को छोड दिया। नगर निवासियो को जब यह ज्ञात हुआ तो चारो ओर एक ही स्वर गूंजने लगा कि यह कैसे सम्भव हो गया है। हो न हो

यह बहू हमारे गांव में एक देवी के रूप में आई है। यही स्वर चारो ओर से आने लगा देखिये उस कन्या ने अपने जीवन को पूरी तरह से नही थोड़ा सा ही सस्कारित किया फिर भी दुनियां वालो ने उसको अपना पूज्य मान लिया।

मानव यदि अपने जीवन में थोड़ा भी सस्कार को अपना ले और तदनुरूप प्रवृत्ति करता हुआ पदम प्रभु की प्रार्थना मे लीन हो जाए तो जीवन की वास्तविक शान्ति उससे दूर नही रहेगी आवश्यकता है जीवन के सस्कारित स्वरूप को समझकर चलने की।

लाल भवन,
२२-७-७२

●●

जैसे सस्कार किया हुआ अन्न मधुर व सुपाच्य होता है, वैसे ही सस्कार सपन्न जीवन जगत मे सबके लिए स्पृहणीय होता है।

●

प्रमाद और कषाय का त्याग कर अन्त.करण को ऐसा सुसस्कारी बनाओ, कि उसमे प्रभु की शिक्षा रूप सिहनी का दूध ठहर सके।

—आचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

●●

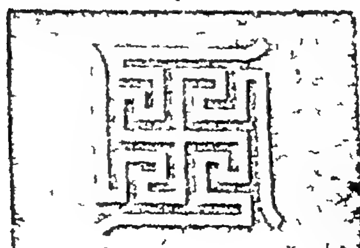
परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी महाराज

के

जयपुर चातुर्मास में प्रदत्त प्रवचन

हम सबको प्रेरणा प्रदान करते रहें।





पलियतं मणुआणजीवियं । —सूत्रकृताग

मनुष्य का जीवन वहुत ही अल्प एव अन्त वाला जीवन है ।

तयस व जहाइ से रय । —सूत्रकृताग

जैसे साप केंचुली को छोड देता है वैसे ही दोषों को छोड देना चाहिए ।

---

४ | जीवन का आदर्श

श्री जिन राज सुपासं
पूरो आस हमारी,
प्रतिष्ठसेन नरेश्वर को सुत
पृथ्वी तुम महतारी ।
सुगुण सनेही साहिब साचो
सेवक ने सुखकारी ॥ श्री जिन राज० ॥
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक
मनवांछित सुख पूरो
बार बार मुझ एही विनती
भव भय चिन्ता चूरो ॥ श्री जिन राज० ॥

बन्धुओ, प्रभु सुपार्श्वनाथ भगवान् की प्रार्थना की कुछ पद्यों का मैंने उच्चारण किया । प्रार्थना के सम्यक् क्रम के अनुसार

वीतराग देव के चरणो में कुछ न कुछ निवेदन कर ही दिया करता हूं फिर चाहे वह विनयचन्दजी की चौबीसी मे से हो, आनन्दघन जी की चौवीसी मे से हो या देवीचन्दजी अथवा अन्य किसी भी आचार्य एव सत की चौबीसी में से हो। सन्त कवियो ने प्रभु के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति भावना को नाना रूपो में नाना प्रकार से व्यक्त किया है।

आज की प्रार्थना के अन्त में भगवान् सुपार्श्वनाथ के चरणो में सन्त कवि ने कुछ निवेदन किया है। क्या निवेदन किया है ? निवेदन किया है कि भगवन् ! आप मेरी आशाओ को पूर्ति करे। आशा ? प्राणी मात्र के लिये आशा एक सम्बल है जिसके सहारे वे अपने अनेकानेक जीवन गुजार देते है। पर सामान्य प्राणी की आशा में और सन्त कवियो की आशा मे अन्तर है। उसी अन्तर को समझना है।

जीवन में आशा का स्थान

कभी कभी कुछ तत्वज्ञ बोल उठते है कि आशा का तो परित्याग करना चाहिये। आशाओ का त्याग किये बिना तो हम भगवान को प्राप्त नही कर सकते, मोक्ष सुख प्राप्त नही कर सकते, यहा तक कि आशा का त्याग किये वगैर हम मोक्ष प्राप्ति के मार्ग पर ही अग्रसर नही हो सकते। मैं निवेदन कर दू कि यह सही है कि आशाओ को अन्त में छोड़ना ही होगा, पर अगर तत्वज्ञो का यह कथन सर्वथा एकागी रूप में हो तो सही नही है। अगर इस कथन को अपेक्षादृष्टि से लिया जाय तो यह कथन सही कहा जा सकता है।

प्रभु प्राप्ति के लिये आशा का त्याग करना अनिवार्य है, आवश्यक है। पर साथ ही अपेक्षा दृष्टि से आशा का रहना भी आवश्यक है, अनिवार्य है। आप कहेगे यह कैसे ? आप भ्रम मे पड़ सकते है। पर ऐसा कुछ नही है। मैं इसे थोड़ा स्पष्ट कर देता हू।

की आशाएँ जड़ मूल से नष्ट हो गईं तो उस मनुष्य का जीवन तो समाप्त प्राय: है। कवियों ने कहा है **आशा सर्वोत्तमा ज्योतिः** आशा सर्वोत्तम प्रकाश है। हिन्दी में भी कहावत है—

जब तक श्वासा तब तक आशा—इस कथन को भी आप अपेक्षा दृष्टि से हल करिये। चिन्तको के वताये मार्ग का अनुसरण करते हुए इस प्रश्न का हल खोजिये।

आशा के सहारे बच्चे बड़े होते हैं, आशा ही के सहारे तरुण अपनी तरुणाई में जो कुछ सोचता है वह कर गुजरता है। आशा के सहारे वृद्ध अपने जीवन के शेप काल का स्वप्न देखता है।

यह तो स्पष्ट है कि आशा आशा में अन्तर है। एक आशा को हम आध्यत्मिक प्रगति का सूचक कह सकते है तो दूसरी आशा को सासारिक, पौद्गलिक जीवन की लम्वी परम्परा का कारण कह सकते है। तो कवि की आशा क्या है ? वह पुकार उठता है :—

श्री जिनराज सुपास पूरो आस हमारी।
धर्म काम धन मोक्ष इत्यादिक मन वांछित सुख पूरी।

बन्धुओ, मानव चाहे मुंह से भले ही कह दे कि आशा का सर्वथा त्याग करना है। लेकिन अनुभूति के साथ और प्रत्यक्ष आन्तरिक शक्ति के साथ वह नही कह सकता। मस्तिष्क के संस्कारो से यदि उसका जीवन सस्कारित है तो उन संस्कारो के सहारे तो वह कह सकता है, लेकिन जीवन के सस्कारो से सस्कारित होकर और "कि जीवन" इस प्रश्न का समाधान जिसने पा लिया है वह मानव वस्तु स्थिति को ओझल नही करेगा। वह सिर्फ हवाई महल नही वनायेगा, वह काल्पनिक आकाश में उड़ान नही करेगा वरन् संस्कारित जीवन के साथ जमीन पर भी चलना चाहेगा।

जीवन के वर्तमान का जो शाश्वत प्रश्न है, जीवन की वर्तमान स्थिति को जो ज्वलन्त समस्याएं है, उन सबको यथार्थवाद के

धरातल पर रखकर, मानव को उनका सही समाधान जब तक नही मिलेगा, तब तक मानव अपने जीवन की सही परिभाषा नही समझ पावेगा और न वह अपने वर्तमान जीवन मे उन पर आचरण ही कर पावेगा। इस विषय में गहराई से चिन्तन करना होगा। इस दृष्टि से व्यक्ति के हृदय गत भावो को यदि आप आकना चाहेंगे तो वह अपने दिल को खोल कर अपनी आन्तरिक अभिलाषा को व्यक्त कर देगा और व्यक्त करते हुए कहेगा कि अमुक-अमुक आशाएँ मुझे लगी हुई हैं। कोई कहेगा कि मुझे धन चाहिए, कोई वैभव की इच्छा प्रकट करेगा और कोई नाना प्रकार के सासारिक पौद्‌गलिक सुखो की अपनी चाह, प्रकट करेगा। इस प्रकार ससार मे आशाएँ इच्छाएँ अनेक प्रकार की हैं—इच्छा वहु विहा लोए इन्द्रिय पोषण की लालसाएँ और इच्छाएँ ही अधिकतर वह प्रकट करेगा। ऐसी तो कोई विरल ही आत्मा होगी जो इन भौतिक पौद्‌गलिक इन्द्रिय जन्य पदार्थों के प्रति अपनी नितान्त अनिच्छा प्रकट करेगी, इनके प्रति उदासीन और अनासक्त होगी और वस्तुतः आन्तरिक जीवन के लक्ष्य प्राप्ति की अभिलाषा से ओतप्रोत होगी।

तो इस तरह से यह स्पष्ट है कि अधिकतर मानवो को मुख्य तौर पर अर्थ और काम की आशा लगी रहती है। इनके बिना मानव अपने को, अपने वर्तमान जीवन को एक दयनीय और असहाय अवस्था मे अनुभव करता है।

क्या अर्थ और काम का पिंड ही जीवन है ?

इस भौतिक युग मे ऐसा कोई विरला व्यक्ति ही मिलेगा जो काम और अर्थ से ऊपर उठ गया हो। इसी धरातल पर रहता हुआ मानव अपने एक महत्त्वपूर्ण भाग की उपेक्षा कर रहा है। वह उपेक्षा धर्म और मोक्ष की हो रही है। क्या वर्तमान का जीवन है? क्या अर्थ और काम का पिण्ड ही जीवन है? इन स्थिति

को समझना आवश्यक है। अर्थ और काम का पिण्ड जीवन नहीं है। फिर इससे ऊपर के दूसरे शब्दो में कहूं तो जीवन का अर्थ प्राण है लेकिन उस प्राण को हम कब समझ पायेंगे ? तब, जबकि हम वस्तु स्थिति का ज्ञान करेंगे, उसका चिन्तन करेंगे-न आकाश में उड़ेंगे, न आदर्शवाद की कोरी बातें करेंगे। हम आध्यात्मिक जीवन की पृष्ठभूमि में चिन्तन करेंगे तब जाकर हमारे जीवन की वह संस्कारित अवस्था आयेगी तो आप आशाओं की स्थिति के साथ चिन्तन कर रहे है। आज काम और अर्थ की आशायें लगी हुई हैं और इसके एकान्तिक स्वरूप में मानव बह रहा है। वास्तविक सस्कारित कहलाने वाला प्राणी भी इस अर्थ और काम को सर्वथा तिरष्कृत नही कर सकता। यथास्थान किसी न किसी रूप मे उसकी यथार्थता भी समझता है। वह चाहे हेय हो, ज्ञेय हो, अथवा उपादेय हो उसे ठीक रूप मे समझता है।

आज का विचारशील मानस कुछ ऐसा बन चुका है कि कोई कोई तो अर्थ और काम को सर्वथा तिरस्कृत करता है और उस आध्यात्मिक दृष्टि से चरम छोर को ही वर्तमान मे प्राण की सज्ञा देता है, लेकिन वर्तमान जोवन किस धरातल पर है। इसे वह भूल जाते है। यदि उसकी दृष्टि एकान्तिक बन जाती है तो वह भी दूसरे शब्दो में असस्कारित जीवन कहा जा सकता है। वह वीतराग दृष्टि से सस्कारित जीवन नही है। सस्कारित जीवन का मापदण्ड देखे तो वस्तु 'स्थिति का यथार्थ रूप आ सकता है, और वही जीवन की वास्तविक आशाओ की ओर उन्मुख होगा। इस बात का सकेत प्रार्थना की कड़ियो के अन्दर थोड़ा दिया गया है। उसमें अर्थ और काम को भी लिया है लेकिन स्वतन्त्र और स्वच्छन्दता के रूप में नही। उसको नियन्त्रित अवस्था में लिया है इसलिए कविता में सकेत है, भगवान् आप मेरी आशा की पूर्ति करो, लेकिन मेरी आशा क्या है ? जो दुनियाँ की काम और अर्थ

की आशा है वह नही, मेरी आशा कुछ और ही है। उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इत्यादि हैं। उन्होने सबसे पहले धर्म लिया उसके बाद अर्थ और काम को लिया है, और मोक्ष को अन्त मे लिया है। आप देखेंगे धर्म और मोक्ष आगे पीछे जुडा हुआ है। अनुसन्धान का स्वरूप जुदा है—प्रारम्भ मे धर्म है, बीच में अर्थ और काम है और अन्त मे मोक्ष है। अर्थ और काम को छोडा नही है। इसको संशोधित किया है। इसको बीच मे रखकर स्वतन्त्र छूट नही दी है। स्वतन्त्र छूट देने से यह जीवन को आवारा बना देगा। आप देखेंगे जब एक अपराधी सरकार की ओर से पकडा जाता है तब वह बीच मे चलता है। पीछे सिपाही आगे सिपाही और बीच मे किसको रखा जाता है? अपराधी को। जो अत्यन्त उद्दण्ड और स्वच्छन्द होता है तो वह उसमे नियन्त्रित पाया जाता है। वैसे ही धर्म और मोक्ष इन दो छोर से रहित जो काम और अर्थ हैं ये अत्यन्त उद्दण्ड इन्सान के समान है। मानव इन दोनो की अनियन्त्रित स्थिति से हैवान और राक्षसी धर्म पर पहुच जाता है चाहे वह कितना ही बडा अधिकारी या अर्थ सम्पन्न व्यक्ति क्यो न हो। हम पौराणिक रामायण का चिन्तन करे तो यह विषय और भी स्पष्ट हो जायेगा रावण जैसा राजा जिसके पास तीन खन्ड का आधिपत्य था, जिसका जीवन अर्थ मे सम्पन्न था लेकिन उसके जीवन के आगे पीछे का छोर नही था। धर्म और मोक्ष की मुख्य स्थिति नही थी। अर्थ और काम की दिशा थी, इसी स्थिति मे वह चलता था। आज इन्सान राम के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है, और रावण के स्वरूप को कुछ और दृष्टि से देखता है। इस प्रकार की पूर्व घटित घटनाएं अतीत की हो सकती हैं लेकिन वर्तमान जीवन का परिमार्जन करना है तो इन दोनों तत्त्वों पर नियन्त्रण लगाना होगा।

अर्थ, काम पर धर्म और मोक्ष का नियन्त्रण हो !

धर्म और मोक्ष इन दोनों को आगे पीछे रखता है। ये कठिनाए

कवि की बनाई हुई है और कवि ने सांसारिक मनुष्यों की भावनाओं को ध्यान में रखकर धर्म और मोक्ष के साथ काम और अर्थ को भी जोड़ दिया। वीतराग देव ने कहा है—

तहारूवस्स समणस्स माहणस्स वा अन्तिए एगमवि
आयरिए धम्मियं सुवयण सोच्चा णिसम्म तओ
जायसवेगे जायसड्ढे तिव्वधम्माणुरागरत्ते से णं
जीवे धम्मकामए पुण्ण कामए सग्ग कामए मोक्ख कामए····

—भगवती सूत्र

—तथारूप श्रमण अर्थात् निर्ग्रन्थ और महान-अर्थात् वीतराग वाणी का अनुसरण करने वाला श्रावक उसके पास से वीतराग देव का धर्म युक्त एक भी सुवचन सुनकर वह सवेग युक्त होता है, श्रद्धा सम्पन्न होता है तो वीतराग देव के कहे हुए धर्म के प्रति तीव्र धर्मानुराग उत्पन्न होता है। और जब तीव्र अनुराग पैदा हुआ तो सम्यग् दृष्टि-हेय,ज्ञेय-उपादेय का ज्ञान भी प्राप्त हो गया, उसने आत्मा परमात्मा का रहस्य समझ लिया, यह भी समझ लिया कि पुण्य जानने योग्य है ? ग्रहण करने योग्य है ? अथवा छोड़ने योग्य है ? और उसके साथ ही काम क्या है, अर्थ क्या है ? मोक्ष क्या है ?

बन्धुओ, अब जरा इन वाक्यो के अर्थ की तरफ ध्यान दीजिए और उस दृष्टि से चिन्तन करिए। जिसमें धर्म के प्रति प्रगाढ श्रद्धा होगी, वही धर्म की कामना करता है। कामना अर्थात् एक दृष्टि से धर्म की आशा आकाक्षा करना, आशा करना, अभिलाषा करना यह सब अर्थ इसमे समाहित है। यह मेरा कथन नही है। कवि का भी वचन नही है स्वय भगवान श्री वीतराग देव की स्पष्ट वाणी है। तव यह कैसे कहा जा सकता है कि सर्वथा सभी कामनाओ से मुक्त रहना चाहिए। मुक्त भी होते है, पर व्यवहार मे, वह कौन-सी कामना से मुक्त होने की वात है ? यह समझने की आवश्यकता है। उस कामना से हमें मुक्त रहना चाहिए जो मोहजनित हो, जिसमें

एकान्त, रूप से केवल अर्थ और काम की प्राप्ति ही ध्येय रूप में हो। केवल अर्थ और काम को चरम लक्ष्य मानकर जो चलना चाहे तो वह इस तरह की कामना त्याज्य है। पर जो जीवन के ध्येय रूप मे परमात्म स्वरूप की प्राप्ति को मानकर चलता है, वास्तविक सस्कारित जीवन को प्राप्त करना चाहते हैं वे इसकी कामना को इसकी आशा को या आकाक्षा को त्याग कर नही चल सकते।

जीवन क्या है? इस प्रश्न को हल करने के लिये वह धम्मकामये धर्म की कामना करके चलता है। धम्मकामये शब्द के साथ-साथ आगे जो शास्त्र पाठ आया है पुण्णकामये। वह पुण्य की भी कामना करता है।

कुछ तत्वज्ञ यह भी कहते है कि पुण्य की कामना क्यो करता है? तो वीतराग वाणी के उद्घोषक स्पष्ट कहते हैं कि चू कि मानव आज निखालिस आत्म स्वरूप मे नही है, इसलिए शुद्ध आत्म-स्वरूप को प्राप्त करने के लिए सहायक रूप में पुण्य की भी कामना करनी होगी। आत्मा आज के मानव के रूप मे शुद्ध बुद्ध और मुक्त नही है। शरीर का और कर्मो का पिण्ड आज उसके साथ लगा हुआ है। उस शरीर पिण्ड से या कर्मपिण्ड से आधारित आत्मा के शुद्ध स्वरूप को प्रकट करना है तो आपको पुण्य की आशा करनी होगी। अगर आप और चिन्तन करेंगे तो ज्ञात होगा कि जिस अपने शरीर पिण्ड के साथ आत्मा है यह शरीर पिण्ड क्या है? पुण्य का फल ही तो है। तीर्थंकर नाम कर्म की प्रकृति भी पुण्य का उत्कृष्ट फल है। इस प्रकार पुण्य के फल को देखें तो मनुष्य का जन्म मिलना, आर्य क्षेत्र का मिलना, पाच इद्रियो की निरोगता प्राप्त होना, और वीतराग देव के धर्म को श्रवण करने का अवसर मिलना आदि सब पुण्य प्रकृति रूप कर्म का फल कह सकते हैं। कामना रहित हो सकते है, पर

आप बिना शरीर के द्वारा उद्यम किए, कामना रहित हो सकते है ? नही। बिना शरीर के किसी सांसारिक प्राणी ने अपना पूर्ण विकास प्राप्त नही किया। चाहे वे तीर्थंकर ही क्यो न रहे हों। वज्रऋषभनाराच सहनन और समचतुरस्रसस्थान तीर्थंकरो के और अन्य पुण्यशाली जीवो के होते है और ये सभी पुण्य के फल कहे गये है। उस पुण्य प्राप्ति की स्थिति को तीर्थंकर जैसे प्रवल महापुरुष भी साधक अवस्था में नही छोड़ सके है। शास्त्रकारो ने इस पुण्य के लिए कहा है कि यह जानने योग्य तो है ही, पर साथ ही ग्रहण करने योग्य भी है और त्यागने योग्य भी है।

आप प्रश्न करेगे कि जब पुण्य ग्रहण करने योग्य है तो मोक्ष क्या है ? क्योंकि पुण्य की जब तक कामना होगी परिपूर्ण मोक्ष नही हो सकता है ?

इस प्रश्न का समाधान शास्त्रकार अपेक्षा दृष्टि से देते है जीवन की तीन अवस्थाए मानी गई है। प्रारम्भिक, मध्यम और अन्तिम। बस तीन अवस्थाओ में से गुजरते हुए प्राणी कब पुण्य को तथा सभी तरह की आक्षाको को, आशाओ को छोड़े इसका स्पष्ट उल्लेख वीतराग वाणी में है। वीतराग वाणी यथार्थ के धरातल पर चलती है, वह हवाई महल नही है।

प्राणी वर्तमान में साधना के धरातल पर चल रहा है। उसे अपने जीवन का निर्वाह भी करना है, अपने परिवार, समाज और देश के प्रति भी उसके कुछ कर्त्तव्य है उनका निर्वहन भी करना है। आज की परिस्थितियो से भी प्राणी को निपटना है। राष्ट्र मे एक पवित्र वातावरण के निर्माण में भी उसे अपना योगदान देना है। अपने परिवार और समाज के प्रति भी उसके जो कर्तव्य है उनको पूरा करते रहना है और यह सब करते हुए अपने जीवन को भी जीना है। किन्तु यह सब कैसे ? वही प्रश्न हमारे सामने वार-वार आता है "कि जीवन" जीवन क्या है, इसे कैसे जीया जाय ? कैसे इसे

समता के धरातल पर लाया जाय। समता की पराकाष्ठा तक इसे कैसे पहुचाया जाय ?

यदि इन प्रश्नो को हल करने के लिए अपने सभी प्रकार के कर्त्तव्यो का पालन करने के लिए और जीवन की चरम परिणति, चरम ध्येय को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहना है तो उसके लिए भी वर्तमान जीवन आवश्यक है। वर्तमान जीवन मे रहते हुए चरम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए पुण्य उपार्जन करना आवश्यक है, उसका एकान्त त्याग करने की बात करना युक्ति संगत नहीं है। वह वीतराग देव के रूप मे पहुचने के लिए संस्कारित भूमिका नहीं है। हा, साधना के चरमबिन्दु पर जब प्राणी पहुंच जावे तब वह पुण्य भी त्यागने योग्य हो जावेगा। इससे पहले पुण्य छोड़ने योग्य नहीं है पुण्य सर्वथा ज्ञेय रूप मे नहीं समझा जावे, पर त्यागने योग्य भी समझा जावे। यह हमारा सूत्र है। साधना की पराकाष्ठा पर, चरम परिणति पर जब प्राणी पहुंच जावे तब सभी प्रकार के पुण्य भी त्यागने योग्य है। इसका ध्यान रखिए। इसको एक दृष्टान्त देकर मै स्पष्ट कर दूं ताकि आपकी समझ में ठीक तरह से यह तत्व आ जाय।

नाव भी आखिर छोड़नी है

किसी ने हमे यह जानकारी दी कि समुद्र के दूसरे किनारे पर एक कोई बहुत सुन्दर नगर है, बड़े भव्य भवन वहा बने हुए हैं जहा कि बहुत उच्च कोटि के मणि-माणिक्य हमे मिल सकते हैं। अब किसी जानकार से हम पूछते हैं कि समुद्र के उस किनारे पर कैसे पहुँचा जाय। जानकार व्यक्ति आपको जानकारी देता है कि देखो भाई, इस किनारे पर जहां हम है वहां घाट बने हुए हैं। उन घाटों पर दो प्रकार की नौकाएं हैं। एक पत्थर की बनी हुई है और दूसरी लकड़ी की। आप यह जानकारी कर लेना कि कौन-सी नाव पत्थ

की है और कौन-सी लकड़ी की। यह जानकारी करने के बाद पत्थर की नाव को तो आप छोड़ देना, और लकडी की नाव ले लेना उसमें बैठकर समुद्र के परले किनारे पहुँच जाना वहा जाकर इस लकड़ी की नाव को भी छोड़ देना है, और किनारे पर उतर कर अपने गन्तव्यस्थल पर पहुँच जाना है। लेकिन एक बात है, बीच समुद्र मे तरग नही लाना है और कही उस तरग में आप यह मत सोच बैठना कि इस लकड़ी की नाव को जब छोड़ना ही है तो अभी क्यो न छोड़ दिया जाए। किनारे तक पहुंचने तक इस नाव के बोझे को क्यो ढोया जाय। ऐसा मत करना। केवल किनारे पर पहुँचने के बाद ही इसको त्यागना है, यह ध्यान में रखने की बात है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना है कि जिसने हमें इस किनारे पहुँचाया उस विचारी नाव को किनारे पहुँच कर कैसे छोड़े ? यह विचार करके उससे चिपके भी नही रहना है। किनारे पर पहुँचते ही उसे तुरन्त छोड़ देना है और अपने लक्ष्य की तरफ बढ जाना है। अगर उस किनारे पहुचकर भी उस नाव मे ही बैठे रहे तो आपका जो लक्ष्य है—चरम मोक्ष की प्राप्ति उसे आप प्राप्त नही कर सकेगे जैसे जिस ध्येय से आप वहा जा रहे है मणि माणिक्य आदि के लिये उन्हे प्राप्त नही कर सकेगे। क्योकि मणि माणिक्य या मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करना है इसलिए किनारे पर पहुँचते ही हमे नाव को छोड़ देना है। किनारे पहुच कर लकड़ी की नाव को छोड़ देगे तो भव्य भवन रूप मोक्ष में पहुच जावेगे।

तो जिस तरह से पत्थर की नाव को तो शाश्वत रूप से त्याग कर देना है और लकड़ी की नाव को ग्रहण कर लेना है। लड़की की नाव को ग्रहण करते हुए भी अन्त में उसे भी छोड़ देना है उसी तरह से हमारे जीवन के ध्येय को हमें प्राप्त करने मे सहायक रूप पुण्य को तो ग्रहण करना है और डुबाने रूप पाप को पहले ही सर्वथा छोड़ देना है। ध्येय की प्राप्ति पर पहुचने पर पुण्य को भी छोड़ कर

कर्मयुक्त है उसे कर्म रहित निर्मल और ब्रह्म रूप बनाने के लिए शरीर की स्थिति जो पुण्य की प्रकृति है वह साधन रूप है, यह मान लिया इस प्रकार पुण्य भी साधनरूप है, यह भी मान लिया। पर आगे जो ज्ञानियो ने यह कहा कि—

सग्ग कामए

यह स्वर्ग की कामना करने की बात कैसे कही जा रही है ? तो मै बताना चाहता हू कि इसके पीछे भी एक शास्त्रीय रहस्य है जो हमे समझना है। इसमें भी स्पष्ट कहा है कि स्वर्ग की आकाक्षा मोह दशा के कारण नही करनी है। आशक्ति उसमें भी नही रखनी है। पर स्वर्ग की कामना एक तरह से इसलिए की जाती है कि इसमें भी विश्राम लेने की कभी-कभी आवश्यकता पड सकती है। विश्राम स्थल के रूप में इसकी कामना की जाती है।

आप इसे इस तरह से समझ लीजिए कि एक व्यक्ति है। उसे कलकत्ता जाना है। वह कलकत्ता हवाई जहाज से उड़ कर जा रहा है। पर एक ही उड़ान में हवाई जहाज कलकत्ता नही जा सकता, इसके लिए वह बीच मे किसी शहर के हवाई अड्डे पर थोड़े बहुत समय के लिए विश्राम हेतु रुकता है और थोड़े समय विश्राम करके फिर उड़ चलता है और कलकत्ता पहुचता है।

पर अगर वह यात्री बीच में पड़ने वाले हवाई अड्डे पर पहुंच कर यह सोचने लगे कि यहा बड़े अच्छे विशाल भवन है, सभी तरह की सुख सुविधाएं, यहा बड़ा सुन्दर विश्राम गृह सरकार ने बना रखा है, तो ऐसे सुन्दर स्थान को छोडकर अब क्यो आगे जाऊं, यही रह जाऊं तो अच्छा है। यह सोचकर अगर वही रह जाता है तो अपने गन्तव्य स्थान पर नही पहुँच सकेगा, पर अगर वह यह सोचे कि यह तो केवल विश्राम स्थल है, भले ही बड़े-बड़े विशाल भवन क्यो न हो, सभी तरह की सुख सुविधाएं क्यो न हो, मुझे तो अपने लक्ष्य पर पहुंचना है, कलकत्ता ही पहुँचना है,

यह सोचकर जितनी देर हवाई जहाज ने वहा विश्राम लिया उतनी देर तक ही विश्राम करके हवाई जहाज मे बैठकर कलकत्ता के लिये प्रस्थान कर गया तो कलकत्ता पहुच जावेगा। जितनी देर वह वहा रहता है उतनी देर तक उस भव्य भवन मे विश्राम करता है और उसी दृष्टि से उसकी कामना भी करता है तो वह जैसे भवनो की कामना करता हुआ भी कलकत्ता ही पहुचता है। इसी प्रकार केवल इस विश्राम की दृष्टि से शास्त्रकारो ने कहा है—"सग्ग कामए"

इसका इतना ही अर्थ समझिये कि विश्राम स्थल पर थोड़ा विश्राम ले ले, अपनी यात्रा की थकान उतार ले और फिर अपनी यात्रा अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति हेतु शुरू कर दे।

इसी हेतु आगे कहा है—मोक्ष कामये।

मोक्ष की कामना लेकर चलता है और बीच मे विश्राम कर लेता है अत यह आकाक्षा इससे सम्बन्धित है इसलिये त्याज्य नही है।

अब कोई यह प्रश्न करे कि मोक्ष की आकाक्षा करने में और अर्थ और काम की आकाक्षा करने मे क्या अन्तर है?

जहा मोक्ष की आकाक्षा करना प्रकाश है वहाँ अर्थ और काम की आकाँक्षा करना अन्धकार है अभिलाषा करने का तात्पर्य अराजकता की इच्छा करना नही है। मोक्ष की अभिलाषा रखते हुए अर्थ और काम मे उलझ जाता है तो वह अपने गन्तव्य स्थल तक कैसे पहुचेगा? अपने चरम लक्ष्य को कैसे प्राप्त करेगा?

अब कोई आगे चलकर कहे कि यह क्या आकाक्षा वाकाक्षा लगा रखी है। हमे कोई किसी तरह की आकाक्षा नही रखनी है। तो यह भी कसे हो सकता है? एक व्यक्ति जयपुर जैसे शहर मे इधर उधर परिभ्रमण कर रहा है। इधर-उधर पथभ्रष्ट-सा लक्ष्य-हीन होकर भटकता फिर रहा है, उसे कोई पूछता है कि भाई इधर-उधर क्यो भटक रहे हो, यह सारा श्रम क्यो कर रहे हो?

कहाँ जाना चाहते हो ? अगर इसके उत्तर मे वह यह कहे कि यह तो मुझे मालूम नही। तो उसे आप क्या कहेगे कि यह तो पागल मालूम होता है।

वैसे ही इस जीवन मे रहते हुए आपसे अगर पूछा जावे कि आपका लक्ष्य क्या है, आप कहा जाना चाहते हैं, क्या करना चाहते है तो आप तत्काल उत्तर देगे कि हम अपने जीवन को इस तरह से सस्कारित करना चाहते है कि जिससे 'किं जीवनम्' जीवन क्या है इसके हल को ढूँढ सके और ढूँढ कर उस पर आचरण करते हुए उसके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर सके। यह भी आशा है इसको दूसरे शब्दो में कामना कह सकते है। जैसा कि तीर्थंकर भगवान के लिए नमोत्थुणं मे पाठ आया है **सम्पविउओ कामाण** यानि मोक्ष को प्राप्ति की कामना रखने वाले ऐसे तीर्थंकर भगवान के लिए भी कामना का विशेषण लगा है तो नीचे के साधको के लिए कोई आपत्ति नही है।

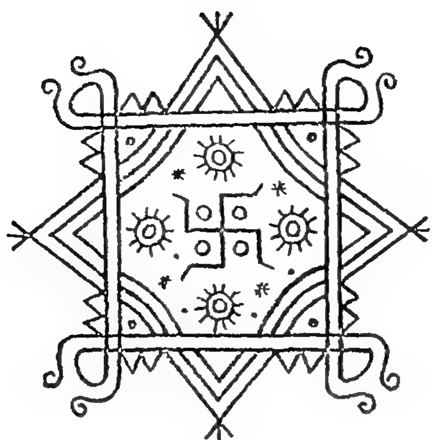
पर, इसके विपरीत आप यह कह बैठे कि हमारा तो कोई ध्येय नही है, तो क्या बिना ध्येय के आप भी पागल की तरह यह सब क्रियाएँ कर रहे है ? इस तरह से बिना ध्येय की क्रियाएँ करने से क्या लाभ होगा ?

प्राणी अगर निश्चित ध्येय के साथ चलता है और अपना एक व्यवस्थित कार्यक्रम बनाता है तो मोक्ष की भी वह अभिलाषा रख सकता है। आसक्ति के साथ वह अर्थ और काम से ही बधा नही रहता, मोह-जनित लगाव उसका उससे नही रहता। वह बीच के समय में कदाचित् वह काम और अर्थ को भी आकाक्षा करता है, तो परिवार के प्रति अपने कर्तव्य निर्वहन आदि के लिये करता है, और मोक्ष और धर्म के अन्तरपुट में उनको रखकर चलता है। गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी मर्यादित जीवन, सुसस्कारित जीवन बिता

रहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सही रूप मे उपासना आकाक्षा करते हुए अन्तर मन में धर्म और मोक्ष का पुट देता हुआ, सुसस्कारित जीवन बिता रहा है, तो उसकी यह प्रार्थना सार्थक है। जैसा मैं पूर्व मे उच्चारण कर आया हू कि—"धर्म काम धन मोक्ष इत्यादि मन वाछित सुख पूरो।"

आज की स्थिति पर जब हम विचार करते हैं तो लगता है—आज दुनियाँ में व्यक्ति की स्थिति एक मरीज की स्थिति जैसी बन रही है। इसको एक उदाहरण से स्पष्ट कर लें एक रोगी अत्यन्त पीड़ित था। अन्दर मे दाह ज्वर लग रहा था और ऊपर से भी चमडी जल रही थी। ऐसा मरीज एक विचक्षण वैद्य के पास पहुँचा। उसने अपनी सारी शारीरिक स्थिति रखते हुये कहा—वैद्यराज जी, ऐसी दवा दीजिये, जिससे मेरा अन्दर का दाह भी समाप्त हो जाय और बाहर की जलन भी समाप्त हो जाय। वैद्यराज जी बडे अनुभवी थे। उन्होने चार पुडियायें बनाई और उन चार पुडियाओ मे दो सुबह शाम लेने के लिये कहा—भाई ये दो पुडिया तो शहद मे मिलाकर सूबह शाम मे ले लेना और ये दो पुडियायें जिसको पानी में घोलकर सुबह भी लेप लगायें और शाम को भी लेप कर लेना। इन चारो पुडियाओ को लेने से तुम्हारी बाह्य और आभ्यन्तर पीड़ा समाप्त हो जायेगी। मरीज को विश्वास था। उसने चार पुडिया ग्रहण की और घर पर पहुचा। घर पहुचकर शहद लेने की दृष्टि से वह अन्दर गया और शहद लाया, किन्तु जो पुडिया शहद मे लेने की थी उसको उसने पानी मे घोलकर लेप कर लिया और जो पुडिया पानी मे घोलकर लेप करने की थी उसको उसने शहद मे मिलाकर पेट मे ले लिया। चमड़ी पर लेप करने की और शहद मे अन्दर मे लेने की पुड़िया को वह भूल गया और विपरीत दशाओ मे पुडिया को ग्रहण किया। इससे जो अन्दर की जलन थी वह और भी बढ गई और जो

बाहर की ताप की स्थिति थी वह भी अत्यधिक उग्र हो गई। उसने सोचा शायद एक पुड़िया से ऐसा हो गया है दूसरी पुडिया और ले लूँ तो इसी तरह शाम को भी विपरीत दशा में पुडियाये ले ली—जो खाने की थी उसका लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद में मिलाकर चाट लिया। इससे इतनी बीमारी बढ गई कि रात्रि शान्ति में नही बीती। उसने सोचा रात्रि में मै मनुष्य लोक में हूं या नही हूं इतनी वेदना उसको सताने लगी। प्रात.काल वह फिर वैद्यराज जी के पास पहुचा और अपना हाल कहने लगा। वैद्यराज जी बड़े अनुभवी थे। बीमारी का हाल सुनकर और सारी स्थिति का अध्ययन कर पूछा—कौन कौनसी पुड़िया किस किस प्रकार ली है? तो उसने बताया कि अमुक अमुक प्रकार ली है। वैद्यराज जी समझ गये कि मरीज ने उलटी पुडियाये ले ली है। जो पुड़िया खाने की थी उसका चमडी पर लेप कर लिया और जो लेप करने की थी उसको शहद में डालकर खा लिया इसलिये तुम्हारा रोग बढ गया है। वैद्यराज जी ने दुबारा उसे चार पुडियाये दी और ठीक प्रकार समझा दिया जब वह दुबारा दवा को उचित विधि से यथास्थान लेता है तो उसका रोग मिट जाता है। यह एक रूपक है। आज भी इसी प्रकार प्राणी यतियो और साधुओ के पास अपने जीवन के प्रश्न को हल करने के लिये—धार्मिक जीवन बिताने के लिये, पहुँचता है। सन्त महात्मा भी यही कहते है कि दो पुड़िया को अन्दर में लो और दो पुडियाओ का बाहर में लेप करो। लेकिन लेने वाले क्या कर रहे है? उनको उल्टी-सीधी ले लेते है। ये चार पुड़ियाये हमारे पास कौन सी है? धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पुड़ियाये है। अब इन चार पुडियाओ मे से दो पुडिया जो धर्म और मोक्ष की है वह अन्दर में लो, शहद के साथ जिससे सारा जीवन पवित्र बने और संस्कारित जीवन बने और



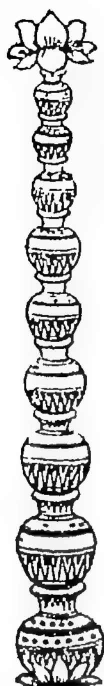
परम श्रद्धेय **आचार्य श्री नानालालजी म० सा०**

की

पीयूष-वर्षिणी प्रवचन गगा

जन-मन के पातक धो डाले ।





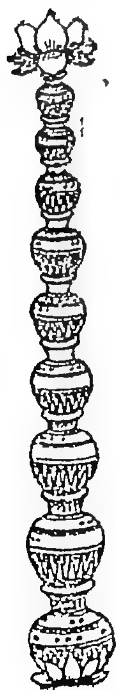
जीवन को सद्संस्कार और सद्विचार

से

पावन करने वाली संत वाणी

सबके लिए सुखद हो।





पूनमचंद बोथरा (कपडे के व्यापारी)

पथारवाडी

(जि. काछार, आसाम)

सस्कारित जीवन बनकर जीवन क्या है इस प्रश्न का हल हो सके। बाकी की जो दो पुडियाएँ हैं—अर्थ और काम की, इनको ऊपर लेप के रूप मे लें। परन्तु आज की दुनिया उल्टी चल रही है। काम और अर्थ की पुडियाओ को अन्दर लिया जा रहा है, उसके अन्दर ग्रस्त होते जा रहे है और धर्म और मोक्ष की पुडियाओ का लेप लगाया जा रहा है। धार्मिक कहलाने वाले पुरुष भी विचारक वर्ग के लिए आलोचना का विषय बन रहे है। इसीलिए आज धर्म भी आलोचना का विषय बन जाता है। आज बडे आदमी चोर बाजारी करते है, चोरी से अपना व्यापार करते हैं। ऊपर से धार्मिक बनते है अन्तर मे अधार्मिक भावनायें होती है। इसलिये हमे यथार्थता की भूमि मे जीवन का चिन्तन करना है और जीवन के प्रश्न को हल करना है। कि वास्तव मे जीवन क्या, है ? यह प्रश्न भी तभी हल होगा जब आप धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की वास्तविक विधि को समझेंगे।

लालभवन
२३ जुलाई १९७२



सुयाणं धम्माण ओगिण्हणयाए उवधारणयाए
अब्भुट्ठेयव्व भवइ। — स्थानाग सूत्र

सुने हुए धर्म को ग्रहण करने, उस पर आचरण करने को तत्पर रहना चाहिए।

---

५ | बंधुत्व भावना

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नै तू धणी।
अब तौंसु गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभु, जगजीवन अन्तर्यामी।
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी॥

बन्धुओ, यह चन्द्र प्रभु भगवान की प्रार्थना है। आपके सामने प्रार्थना का जो शाब्दिक परिवर्तन आ रहा है,वह कविता का भी परिवर्तन है। लेकिन प्रभु के गुणो का,भगवान की शक्ति का, भगवान के पवित्र स्वरूप का परिवर्तन नही है। परमात्मा के चरणो में हम कैसे भी शब्दो से प्रार्थना करे,प्रार्थना की पक्तिया हिन्दी कविता के रूप मे हो, सस्कृत भाषा मे हो, प्राकृत, इग्लिश या अन्य उदू फारसी आदि किसी भी भाषा मे क्यो न हो, इस भाषा के आवरण के पोछे प्रभु को विस्मरण नही करना चाहिए। भाषा के पर्दे को हटा कर परमात्मा के निखालिस स्वरूप को देखने की आवश्यकता है।

जय भगवान की या भक्त की ?

प्रभु के लिए विशेषण दिया गया है कि "जय जय जगत शिरोमणि", हे जगत् के शिरोमणि, यहाँ जगत को एक शरीर माना गया है,उसके सिर की कल्पना की गई और उसके ऊपर मणि के रूप मे प्रभु को याद किया गया है। जो जगत् के सिरमोर है, जगत के स्वामी हैं उस स्वामी की जय चाही गई है। लेकिन सोचने का विषय है कि क्या कवि प्रभु की जय बोले तब उनकी जय होगी और प्रभु की जय न बोले तो भगवान की जय नही होगी। इस कल्पना से यदि कोई सोचता है तो यह सोचना ठीक नही है ? भगवान की तो सदा जय है। आपके जय बोलने से उनकी जय होगी और आपके जय नही बोलने से उनकी जय नही होगी यह बात नही है। कवि या भक्त भगवान की जय बोलता है तो वह भगवान की नही, बल्कि अपनी जय चाहता है। कभी-कभी हिन्दुस्तान की जनता भारत की जय बोलती है। भारत क्या है ? भारत देश है या हिन्दुस्तान है या भारत के अन्दर रहने वाली जनता है। [illegible] भारत की जय के पीछे भारत सरकार की जय नहीं है लेकिन भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की जय है [illegible] भारतवासियो की जय आती है, और [illegible] पाकिस्तानवासिया की जय [illegible] इग्लैड आदि विभिन्न देशो [illegible] की जनता की जय समझी [illegible] देश की सरकार की जय [illegible] देश है। हिन्दुस्तान है [illegible] क्या है, भगवान [illegible] समग्र के अन्दर [illegible] है। एक [illegible]

होती है और अन्य देश की पराजय इसमे चाही जाती है, लेकिन भगवान की जय बोलने से समग्र विश्व की जय चाहे और सारे ससार के अन्दर रहने वाले प्राणियों की जय समझे, तभी वह भगवान की जय बोल सकता है। जो व्यक्ति भगवान की जय बोल करके यदि यह चाहे कि प्रभु, मैं आपकी जय बोल रहा हू, मै आपका भक्त हू, आप मेहरबानी करना, मैं पडौसी के साथ लड़ रहा हू इसलिए आप मददगार हो करके पडौसी की पराजय करना और मेरी जय करना। इस भावना से अगर जय बोल रहे है तो आपने प्रभु के स्वरूप को नही समझा है और आपने सासा रक तौर पर भगवान को अपने साथ घसीट लिया है।

आज के अधिकाश मनुष्य प्रभु को एक तरह का खिलौना समझ रहे हैं। थोड़ी सी कठिन परिस्थितिया सामने आई और झट से भगवान को याद कर लिया। जरा कभी किसी व्यक्ति से टकराहट हो गई, लडने लगे कि झट से भगवान को पुकारने लगे—भगवान आइए, आइए, यह मेरे से दुश्मनी कर रहा है, इसको खत्म करिए और कदाचित् दूसरा भी भक्त हो और भगवान को वह भी पुकारे कि भगवान आइए,मुझसे लडने वाले को खत्म करिए तो कहिए क्या होगा? दोनो भगवान के भक्त और भगवान रह गया एक, अगर भगवान आए तो किसकी मदद करे। इस तरह से भगवान को घसीट करके मनुष्य राग द्वेष की परिणति मे डाल देता है और भगवान का दुरुपयोग करने को तैयार होता है जैसा कि उनका चित्त, मानस बन गया है। वह अपने घर के अन्दर वस्तुओ के टुकडे करता है,मकान का विभाग करता है और अन्य चीजो को वाटता है, जमीन के साथ साथ मोहल्ले और गाव के टुकडे करता है और इसमे भी वह सतोप नही पाता तो वह भगवान को भी टुकडो मे वाटना चाहता है। भगवान को भगवान के सही स्वरूप मे न समझ करके उनको टुकडे-टुकडे के अन्दर वाट कर भगवान को एक पक्ष मे लाकर खड़ा

कर देता है वह भक्त नही है,वह वस्तुत भगवान की जय बोलने का अधिकारी नही है। भगवान की जय बोलने का अधिकारी वही है कि जिसने समग्र ससार को भगवान के राज्य मे माना है और समग्र ससार मे रहने वाले प्राणियो के प्रति वह अपना आत्मीय भाव रखता है और उनके साथ भी यथाशक्ति, यथासम्भव समभाव रखने की चेष्टा करता है, और एक परिवार के रूप मे सारे ससार को देखने का प्रयास करता है, वही व्यक्ति भगवान की जय बोलने का सच्चा अधिकारी है।

बन्धुओ, यह जो प्रार्थना का प्रसग चल रहा है, वह हमारे मस्तिष्क के विकारो को सुलझाने के लिए है। प्रार्थना के अन्दर कभी कभी कवि भावावेश मे आकरके कविता के प्रसग से वह अपनी लघुता व्यक्त कर देता है। जैसे कि इसमें कहा है—

जय जय जगत् शिरोमणि, हूँ सेवक नै तूँ धणी।
अब तोसूँ गाढी बणी, प्रभु आशा पूरो हम तणी।
मुझ म्हेर करो, चन्द्र प्रभु जय जीवन अतरजामी।
भव दुख हरो, सुणिए अर्ज हमारी त्रिभुवन स्वामी।

कवि ने प्रभु के ऊपर उत्तरदायित्व डाल दिया है कि भगवन! आप सिरमौर हैं, मैं आपकी जय बोल रहा हू। आप स्वामी है और मैं सेवक हू। इसलिए सेवक का उत्तरदायित्व आप पर है। बहुत मजबूरी के साथ आ गया हू। सेवक की आशा की पूर्ति करना यह आपका काम है और भवसागर से पार करना भी आप के अधीन हैं। इस कविता के माध्यम से भक्त ने सब कुछ अपना उत्तरदायित्व परमात्मा के चरणो मे रख दिया है। लेकिन आज का युग जैसा सोचने का अभ्यासी है वैसे ही उसकी कल्पना भी दौडती है। तो उस दृष्टि से यह सोचना होगा कि क्या कोई भी भगवान की सेवा मे बैठकर, भगवान के नाम की कुछ कडियो का उच्चारण करके, भगवान के नाम की माला फेर करके निश्चित होकर बैठ जावे, कि

भगवान मेरी सब कामनाए पूरी कर देगे, तो मैं समझता हूं कि यह बहुत ही सस्ता रास्ता मान लिया गया है। हाथ हिलाने की आवश्यकता नही है, पुरुषार्थ करने की जरूरत नही, इधर उधर कुछ भी प्रयास करने की आवश्यकता नही है, इस भावना से यदि इन्सान चलेगा तो वह न प्रभु के स्वरूप को ठीक से समझ पाएगा और न अपने जीवन की समस्याओं को ही हल कर पाएगा। इस प्रकार सोचने से मनुष्य का जीवन परतन्त्र बन जाता है और परतन्त्रता के अन्दर वह अपने जीवन के स्वतंत्ररूप को भूल जाता है। यहा इस प्रार्थना की कड़ियो में भी आपको चिन्तन करना है। भगवान को हम स्वामी मान रहे है और सेवक की स्थिति से चितन कर रहे हैं, इसका इतना ही तात्पर्य लेना है कि, प्रभु, मैं इस वक्त कर्मों से युक्त हूं, कर्मों से आबद्ध हूं, कर्मों की जजीरो से जकडा हुआ हू, मैं ससार के जेलखाने का कैदी हू, इस वक्त मै आपकी तरह से स्वतन्त्र नही हू, आप सदा के लिए स्वतन्त्र बन चुके है, इसलिए मै इस परतन्त्रता के बन्धनो से मुक्त होकर, इस ससार के जेलखाने से निकल कर आपकी बराबरी के यानी आपके तुल्य शक्ति को सम्पादित करूं और अपने जीवन के चरम विकास को प्राप्त करूं। इस भावना से मैं आपके चरणो मे इच्छा व्यक्त करता हू कि मैं आपका सेवक हूँ और इस भव सन्तति से पार होना चाहता हू। मैं यह नही चाहता हू कि मैं सेवक हू तो सदा के लिए सेवक ही रहू। मैं कभी स्वामी नही वन सकूगा, इस भावना का सोचना मनुष्य के लिए हितावह नही है। यह भावना मनुष्य के मन मे वन जावे कि स्वामी सदा स्वामी ही रहेगा और सेवक सदा सेवक ही रहेगा तो सेवक के लिए कभी भी उन्नति होने का प्रसग नही होगा जब कि उनके मस्तिष्क में यह भाव आवे कि मैं भी स्वामी वन सकता हूँ, बशर्ते कि अपने प्रयत्नो से, अपने जीवन को ठीक तरह से समझ करके उसी ढग का पुरुषार्थ करू जिससे कि

स्वामी बना जाय। इस प्रकार मस्तिष्क ऐसी उच्चभावना का बने और इस भावना का सस्कार यदि मनुष्य के मस्तिष्क मे हो तो मनुष्य उन्नति पथ पर आगे बढ सकता है, किन्तु जब ऐसे सस्कार नही रहते हैं तो वह हतोत्साहित होकर मानसिक घुटन का अनुभव करता हुआ सदा के लिए मन मसोस कर बैठा रहेगा और कभी भी उन्नति के शिखर पर नही पहुच पाएगा।

अर्थवादी दृष्टि :

शास्त्रकारो ने यह बतलाया है कि तू भले ही अपनी लघुता व्यक्त कर ले। भले ही सेवक बन जाय लेकिन विश्वास इस प्रकार का दृढ रख कि मैं भगवान के तुल्य बन सकता हू। मेरे अन्दर भी वह भावना है, मेरे अन्दर भी वह शक्ति है, और मैं भी एक दिन उस पद के योग्य बन सकता हूँ। हाँ, इस प्रकार का उत्साह जब मनुष्य के मस्तिष्क मे आता है तो पुरुषार्थ के क्षेत्र मे अपनी गति तीव्र कर देता है और जब सच्चे पुरुषार्थ की ऐसी स्थिति बने तभी जीवन का सही निर्माण हो सकता है, लेकिन वह जीवन के सही रूप को समझे और सही दिशा का अनुसरण करे तभी वह आगे वढ सकता है। लेकिन जब जीवन क्या है इसका भी उसको पता नही। किं जीवनम् ? इस प्रश्न का हल उसके पास मे नही है तो कैसे वह विकास करेगा, किस स्थिति मे वह आगे बढेगा ? आज मैं आपके सामने जो प्रश्न उपस्थित कर रहा हू कि जीवन क्या है इस विषय मे आपको, हमको और सबको सोचना है। यह विषय क्या है इसके सोचने के विषय मे जव चलते हैं तो आज कुछ मनुष्य जिनका दृष्टिकोण ससार के पदार्थों की ओर लगा हुआ है वह प्रश्न कर वैठता है, वह कहता है—

किं आवश्यकता जीवनस्य ?
'अर्थाधिकार-कर्तव्यानां त्वस्त्येव'

"आप जीवन के प्रश्न को हल करना चाहते है लेकिन जीवन की आवश्यकता ही क्या है ? जीवन की कुछ आवश्यकता हो तो हम समझे। आज तो आवश्यकता अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की है। अर्थ के बिना संसार नही चल सकता है। आप अर्थ की बात करिये कि अर्थ को कैसे बढाये, धन की बात करिये, पैसे की बात करिये, व्यापारिक बात करिये। इसके विषय मे हमको समझाइये कि कैसे अधिक से अधिक धनवान बने। इसकी आवश्यकता को तो हम महसूस करते है लेकिन इसको छोड़कर जीवन का प्रश्न सामने ला रहे है वह हमारी समझ में नही आता है। जीवन का यह व्यर्थ का प्रश्न क्यो सामने आ रहा है ?" ये विचार प्रश्न उन व्यक्तियो के हो सकते है जिनकी बुद्धि का विकास आगे नही हो रहा है, जिन्होने धन को ही जीवन समझ लिया है, जिन्होने पैसे को ही सब कुछ समझ लिया है, और पैसे को जिन्होने भगवान मानकर अपने आपको पैसे का सेवक समझ लिया है, ऐसे व्यक्तियो के जीवन का वर्णन स्वर्गीय आचार्य श्री कविता में इस प्रकार किया करते थे कि—

पैसा मेरा परमेसर, लुगाई मेरी गुरु,
छोराछोरी सालिगराम सेवा थारी करूँ।

वे व्यक्ति समझते है कि इस संसार में यदि कोई सार तत्व है तो वह पैसा ही है, पैसा ही मेरा परमेश्वर है। पैसे से बढकर और कोई परमेश्वर नाम का तत्व नही है, पैसे से बढकर कोई जीवन नही है, पैसा ही सब कुछ है। साथ ही अन्य किसी गुरु की भी आवश्यकता नही होती है क्योकि वह हमारे घर में ही हैं जिनको जग की साक्षी से पत्नी बनाया है वही गुरु है, वह जो कुछ कह दे उसके अनुसार चलना है, और छोरा-छोरी बाल-बच्चे सालिगराम है इनकी सेवा करना है।" इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति क्या यह प्रश्न उठायेगे ? कि हमारा जीवन क्या है ? और

जीवन की आवश्यकता क्या है ? अर्थ, अधिकार और कर्तव्य की आवश्यकता तो हम महसूस करते हैं, लेकिन जीवन की आवश्यकता महसूस नही करते है,क्योकि पैसा मिल जाता है,और पैसे के लिए यदि जीवन की भी कुर्बानी करनी पडे तो हम तैयार हैं,अर्थ के लिए जीवन को होम देने के लिए हम तैयार है। जीवन को समझने की आवश्यकता हमे नही है । हम को तो पैसे को समझने की आवश्यकता है । आज उनका दृष्टिकोण अर्थ प्रधान बना हुआ है, सत्ता व सम्पत्ति को ही वे सब कुछ समझ कर चल रहे हैं। यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण नही होगा कि सत्ता और सम्पत्ति के पीछे अगर जीवन होम दिया जाय, जीवन मे खून की नदिया वहानी पडें तो वे बहाने को तैयार हैं। जीवन की उन्हे परवाह नही है । वे सत्ता और सम्पत्ति को परवाह करते हैं। सत्ता और सम्पत्ति का जो यह लक्ष्य बना हुआ है, क्या यह उस लोकोक्ति के तुल्य नही है ।

इसी दृष्टिकोण के कारण आज ससार ,के अन्दर त्राहि-त्राहि हो रही है। आज मनुष्य के जीवन को जीवन नही समझा जा रहा है । उसे खिलौना समझा जा रहा है,चलते हुए मनुष्य का खून कर दिया जाता है, मनुष्य का कत्लेआम होता है। केवल इस सत्ता और सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए अधिकाश देश बडी से बडी सेना तैयार करके, बडे से बडे शस्त्रो का आविष्कार करके, अणु वम फेक कर एक दूसरे को नष्ट करने के प्रयास मे लगे हुए है, इस प्रकार की वीभत्स भावना ससार मे न मालुम कौन सा ताडव नृत्य उपस्थित करेगी इसका कुछ कहा नही जा सकता । आज कुछ ऐसे ही परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे है। वडे वडे शस्त्रो का परीक्षण हो रहा है। इसके पीछे सत्ता और सम्पत्ति का भूत सवार है, जीवन को उन्होने गौण कर दिया है, चाहे आज अमेरिका को देखिये, चाहे चीन को देखिये और चाहे दूसरे देशो को देखिये, वे चाहते हैं कि हमारे पास जनसख्या वहुत है,कही पर लडाई छिड जाय

तो जमीन रहने को मिल जाय, उनको जनसख्या भी युद्ध आदि के प्रसग से कम होजाय तो उन्हे परवाह नही, लेकिन सत्ता और सम्पत्ति चाहिए। इस दृष्टिकोण को लेकर जो मनुष्य चलते है वे क्या जीवन के प्रश्न को समझने की कोशिश करेगे ? जीवन के महत्व का अकन करेगे ? जो जीवन को जीवन नही समझते हैं। जीवन को मिट्टी का ढेला मात्र समझते है वे जीवन की परिभाषा नही समझ सकते है। इधर जो ऊपर से आध्यात्मिक जीवन की बाते करते है पर अन्दर मे उनके भी ऐसे ही विचार रहे तो कह सकते है कि वे भी जीवन की वास्तविक परिभाषा को नही समझ सकेंगे, पर यादरखिए यदि वे जीवन के स्वरूप को ही नही समझ पायेगे तो सत्ता और सम्पत्ति को भी स्थायी रूप से नही पा सकेंगे। क्योकि कहा गया है—जीवन के बिना अर्थ व्यर्थ है, सत्ता व्यर्थ है, और जीवन के बिना कर्तव्य भी क्या हो सकता है। अतः जीवन का स्वरूप समझना नितान्त आवश्यक बन जाता है।

धन, यहीं धरा रहेगा

सिकन्दर ने अपने जीवन में सत्ता और सम्पत्ति को बटोरने के लिये मनमाने कर्तव्य बनाये और लूट-पाट की। जनता को बहुत पीडा पहुँचाई। फिर भी सत्ता और सम्पत्ति से अपने आप को मृत्यु के मुँह से बचा नही पाया। मृत्यु के समय वह हाय-हाय करके चिल्लाने लगा। कि कोई मुझे मृत्यु से बचाने वाला मिल जाय तो जितनी सम्पत्ति मैंने एकत्रित की है वह मैं देने के लिए तैयार हू, लेकिन कोई भी व्यक्ति उसको मृत्यु से नही बचा सका। उसको बचाने वाला कोई नही मिला। तो आप सोचिये कि जीवन के स्वरूप को उसने नही समझा इसलिए दुनिया को तबाह करके जब गया तो खाली हाथ ही गया। तब उसने यह कहावत चरितार्थ कर दी और उसने अपने साथियो से कहा कि जब जनाजा निकालो तो आप मेरे दोनो हाथ

बाहर रखना, ताकि दुनिया देखे कि सिकन्दर सब कुछ लेकर आया था लेकिन जब जा रहा है तो खाली हाथ वह जा रहा है, हाथ फैलाकर जा रहा है। यह उसके जीवन से शिक्षा की स्थिति आज प्रत्येक मनुष्य के लिए लागू होती है। मनुष्य जब माता की कुक्षी से बाहर आता है तो किस हालत मे आता है? उसकी मुट्ठी बन्द होती है। मुट्ठी बन्द क्या है, यह कुदरत की रचना है, लेकिन शिक्षा के दृष्टिकोण से यह समझना है कि मुट्ठी मे कुछ लेकर आया है, पूर्व जन्म मे पुण्यवानी अर्जित करके मुट्ठी बाँध कर आया, और इस जन्म मे धीरे-धीरे इस पुण्यवानी को खर्च करके मानो मुट्ठी खोल कर हाथ फैलाकर जा रहा है अर्थात् जब मृत्यु का प्रसग आता है, मरने की घडी आती है तो खाली हाथ जाता है। यानी पूर्व जन्म की पुण्यवानी लाया था वह खर्च करके यहा जीवन से हाथ धोकर जा रहा है। आज किसके ऊपर मनुष्य अभिमान करता है। आजकल जो बडे बडे किले दिख रहे हैं—उनको आज किस दृष्टि से देखा जा रहा है। उस समय जब कि आचार्य श्री आगरा पधारे थे, जगल निपटने की दृष्टि से लाल किले के पास से जा रहे थे उनके साथ मे जो आदमी मार्ग दर्शक था, कहने लगा आचार्य श्री, यह लाल किला कहलाता है। इसके तीन परकोटे हैं और दो खाइयाँ है। तो आचार्य श्री का चिन्तन मुखरित हो उठा। वे कहने लगे जिन्होने तीन परकोटे और दो खाइयाँ बनाई उस समय उन्होने यही सोचा होगा कि इन किलो के अन्दर मेरी आल-औलाद, मेरे पीछे की सन्तति बहुत सुरक्षित रहेगी, उनके लिए उस समय उन्होने मन-माने अन्याय और अत्याचार किये। अब आप देखिये कि किले मे कौन सुरक्षित रहा? कहाँ उनकी आल-औलाद है? सत्ता और सम्पत्ति सब कुछ मानने वाले वे स्वय दुनिया मे न रहे, उनकी सन्तान नही रही। यह किला आज किसके हाथ मे चला गया। आज उस किले का कोई महत्व नही है और आज के तो शस्त्र भी कुछ और

ही वन गये है। चाहे कितना ही सुन्दर और ऊँचा किला हो लेकिन हवाई जहाज के जरिये एक बम उस पर फेक दिया जाए तो वह भस्मीभूत हो जाता है।

आज इन किलो की दशा क्या है ? मनुष्य उस समय कितना दानव वन कर सत्ता और सम्पत्ति के लिए अपने जीवन को न्योछावर करने चला, लेकिन उसने इस प्रश्न को हल नही किया कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है ? उन्होने जीवन की आवश्यकता को महसूस नही की। जव ऐसे-ऐसे सत्ताधीशो की भो यह स्थिति है तो आज के मनुष्य की स्थिति उनके सन्मुख क्या है ? आज भी करोडो की सम्पत्ति है, अरबो-खरबो की सपत्ति है, इससे भी क्या होने वाला है। इससे जीवन का क्या बनने वाला है ? यदि जीवन को नही समझा गया तो इस अरबो-खरबो की सम्पत्ति से कुछ होने वाला नहो है। यह सम्पत्ति व्यर्थ है। जिस समय ऑख बन्द होगी उस समय अरबो की सम्पत्ति भी पास मे पडी रह जाएगी वह पुन. जीवन नही दे सकती। इसी दृष्टि से मनुष्य के लिए कहा गया है कि—

'असखयं जीविय मा पमायए'

जीवन असस्कृत है प्रमाद मत करो और जोवन के सच्चे स्वरूप को समझो। क्योकि वास्तविक जीवन के बिना सभी प्रपच व्यर्थ है। जीवन है तो सब कुछ है, जीवन नही है तो कुछ भी नही है। इस दृष्टि से आपको अपने जोवन का प्रश्न हल करने के लिए अपने आपको देखना पड़ेगा और अपने जीवन की कडियो को उस परिभाषा के साथ जोडना पड़ेगा। अपने जीवन की गुत्थियो को सुलझाना है तो जीवन मे आने वालो प्रसगो पर भी दृष्टिपात करना होगा। यह जीवन परिवार समाज व राष्ट्र से सम्वन्धित है अतः तत्सम्बन्धी कर्तव्य भी हमारे सामने है आज परिवार समाज व राष्ट्र की क्या-क्या प्रमुख समस्याए है। उन समस्याओ का

हल भी यथास्थान लेना होगा जहाँ परिवार हैं वहाँ परिवार की दृष्टि से सोचना होगा और जहाँ समाज, राष्ट्र आदि की दृष्टि है वहाँ उस दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है, तथा जहाँ जीवन की समस्या है वहाँ जीवन के धरातल पर ही सोचा जा सकता है। इसी तरह सामाजिक क्षेत्र के भी हमारे कुछ कर्तव्य हैं। समाज मे रहने वाले व्यक्तियो के साथ हमारे कैसे व्यवहार हो, उनके प्रत्येक सामाजिक कार्यों मे हम किस रूप मे उपस्थित हैं क्योकि व्यक्ति-व्यक्ति से भिन्न समाज नाम का कोई तत्त्व नही है अत प्रति व्यक्ति से भ्रातृत्व भावना का व्यवहार करने का प्रयास किया जाए तो स्व पर जीवन का सही रूप हमारे सामने झलकने लगेगा। भले ही वह सामाजिक सदस्य किसी स्थिति मे क्यो न हो, चाहे वह आर्थिक दृष्टि से कितना ही कमजोर क्यो न हो। दुनिया की दृष्टि से भले ही वह गरीब हो पर हमारे सम्मुख पैसे की अपेक्षा उसके जीवन की विशेष कीमत है, इस प्रकार अर्थ दृष्टि को गोणकर जीवन का अकन करके यदि समाज के छोटे से छोटे व्यक्ति से आप प्रेम करते हैं, छोटे से छोटे व्यक्ति को भाई समझते है तो वही वास्तव मे जीवन है। लेकिन आज होता क्या हे ? समाज के अन्दर भी प्राय. वही हिटलरशाही चल रही है। छोटे व्यक्तियो का तिरस्कार करते हैं, पैसे के जोम मे, पैसे के आवेश मे दूसरे व्यक्ति को कुछ भी नही समझते। मैं सोचता हू कि आज सामाजिक स्थिति मे भी मनुष्य को कीमत पैसे से आकी जारही है। आज जिसके पास अधिक पैसा है वह समझता है कि मैं ही सब कुछ हू, वह फूला नही समाता है प्रसग आने पर तारीफ भी उसकी ही हागी कि वाह साहब बडे पैसे वाले हैं किन्तु वह पैसे वाला कम पैसे वाले की कदर करने लग जाय तो आप चिन्तन कीजिये उसकी प्रतिष्ठा बढ जाएगी ? जन मानस बोल उठेगा इतना पैसे वाला होकर भी बिना पैसे वाले की कदर कर रहे है। आज

अगर हमें अपने जीवन की समस्याओं को हल करने के साथ साथ सामाजिक समस्याओ को भी हल करना है तो जीवन के वास्तविक स्वरूप को सामने रख कर ही हल करना होगा। यदि आप अपने यहा किसी भाई को काम पर रखते है तो उसकी तरफ भी ध्यान देना होगा कि यह भी मेरे लिए सहायक है। उसके जीवन की कीमत करके, उसको सम्मान देकर, भाई के नाते समान स्थिति मे देखने का अभ्यास करना होगा यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि यदि किसी से काम लेना है तो बडे प्रेम के साथ, स्नेह के साथ लिया जा सकता है तिरस्कार के साथ नही। अगर भेद-भाव करे तो उसका परिणाम कभी अच्छा नही आ सकता। इसी प्रसग में मुझे बीकानेर के एक श्रावक मालूजी की बात याद आती है जिनके पास पैसा तो बहुत था लेकिन वे पैसे के पीछे अपने जीवन को नही भूल गए थे। वे बीकानेर के अन्दर रहते और जब कभी संतो का प्रसग होता, चाहे छोटे सत हो या बड़े हो लेकिन नियमित रूप से व्याख्यान में भी उपस्थित होते। बड़े सतो के व्याख्यान में जाय तो समझना चाहिए कि इसमे कोई विशेषता की बात नही है लेकिन छोटे सतो के व्याख्यान में भी प्रतिदिन उपस्थित होना और बडे ध्यान से व्याख्यान श्रवण करना इन छोटे सतो को इज्जत देना है। और इसके साथ साथ व्याख्यान श्रवण करने के पश्चात् जब कि व्याख्यान समाप्ति पर सब लोग उठ जाते हैं तो अधिकाशत. यह देखा जाता है कि अपने समान पक्ति वाले व्यक्ति से मिलते हैं। उन समान पक्ति वालो मे भी बात होती है, जयजिनेन्द्र साहब, मुजरा साहब, पधारिए साहब। यह किन से करेगे, समान पक्ति वाले से। जो पैसे वाले हैं वे पैसे वालो से ही मिलेंगे।

माया से माया मिलें कर कर लम्बे हाथ।
तुलसीदास गरीब की कोई ना पूछे बात।

यह गरीबी भी क्या जीवन के अन्दर एक ग्रह के रूप में आगई

है। इस ग्रह को हटाने के लिए भारत की प्रधानमन्त्री इन्दिराजी कुछ ना॰। लगा रही हैं कि गरीबी हटाओ। लेकिन गरीबी हटाने के लिए नारो से काम चलने वाला नही है। इस गरीबी के कारण को समझ कर इसको दूर करने के लिए जब तक मानव जीवन का मूल्याकन नही होगा तब तक गरीबी का प्रश्न हल होना दुसार सा लग रहा है। इन्सान का जीवन क्या है, जिन्दगी क्या है, इसको समझे बिना गरीबी का प्रश्न हल नही होगा। इस प्रश्न को हल करने के लिए जब तक राजनैतिक नेताओ के मस्तिष्क मे, समाज के नेताओ के मस्तिष्क मे और समाज के बच्चे-बच्चे के मस्तिष्क मे यह विचार नही आयेगा कि समाज के धरातल पर रहने वाला प्रत्येक मानव अपने अपने जीवन का महत्व अकन करे और मैं भी उनके समान हूँ अतः उसके अनुकूल व्यवहार करूँ तब तक यह प्रश्न हल होने वाला नही है। आज की स्थिति तो यह बन रही है कि जहा कोई बडा आदमी सामने आया उसको ही महत्व दिया जाता है। बडा समझने का भी एक मापदण्ड बन गया है। या तो कोई अधिक पैसे वाला हुआ तो उसको महत्व देगे, या फिर कोई ऊपरी पोषाकी सज्जा के साथ आ गया तो, भले ही उसका आचरण कैसा भी रहा हो लेकिन स्वच्छ सुन्दर पोषाक पहन कर सभा मे आकर बैठ गया तो कहेगे पधारिए साहब! इधर पधारिए। वह पीछे बैठेगा तो नही बैठने देगें, उसको आगे बैठायेंगे। पूछेगें आप कहाँ से पधारे है। आगे बढकर उससे हाथ मिलायेंगे। किन्तु यदि उसकी जगह कोई सामान्य वेशभूषा वाला व्यक्ति सादी पोषाक मे आ जाता है तो उसकी ओर सम्भवत कम ध्यान देंगे और अगर पास मे बैठेगा तो उसको कोहनिया मार कर पीछे करने की कोशिश करेंगे कि कहा आगे आ गया है।

एक प्रेरक आदर्श

बन्धुओ, मैं मालू जी की बात कह रहा था। मालूजी सभा मे

बैठते तो धनवानो की ओर विशेष ध्यान नही देते। उनकी दृष्टि में गरीब साधर्मी नजर आ जाता तो उससे जाकर मिलते। जो आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता उनकी तरफ बढते, मुजरा करते, उनसे हाथ मिलाते और उनके कन्धे पर हाथ धर देते। वह तो फूला नही समाता – अरे सेठ साहब, इतने बड़े आदमी और इतना धर्म करने वाले आज मेरे ऊपर इतने मेहरबान हो गए कि कन्धे पर हाथ धर दिया, इस प्रकार वह फूला नही समाता है। वे उनको एकान्त मे ले जाते और पूछते कि क्या हाल है। घर के सदस्यो की क्या दशा है। आपके जीवन की क्या परिस्थिति है। जब वे अन्तर्मन से एकान्त मे पूछते तो वह दिल खोल कर सेठ साहब के सामने अपनी परिस्थिति रखता कि सेठ साहब यह दशा है। एक कमाने वाला हूँ और दस खानेवाले है। सामाजिक कुरीतियो ने चूर-चूर कर दिया है, मैं पिसा जा रहा हूँ। समाज के अन्दर कोई सुनने वाला नही है। पैसे वालो के सामने आदमी के जीवन की कीमत नही है। मनुष्य मनुष्य को भिन्न समझता है। ऐसी दुर्दशा हो रही है क्या सुनावें। आप आज मेरे बराबरी के बन कर समान स्तर पर पूछ रहे हैं यह आपकी महानता है, पैसेवाले होकर आप मेरे जीवन की चिन्ता कर रहे है इसलिए मैंने भी आपके सामने सारी बाते खोल कर रख दी है। वे उसको सान्त्वना देते कि ये दिन और यह दशा भी रहने वाली नही है। मेरे घर पर बहुत छाछ होती है, गाय भैंसे बहुत है तुम अपने बच्चो को छाछ लेने के लिए भेज दिया करो। तो वह कहता—सेठ साहब इतने रोज तो सकोच के कारण नही भेजा, गरीब आदमी ठहरे, कही बड़े घर में छाछ के लिए भी तिरस्कार हो जाय। धनी लोग गरीबों को छाछ देने मे भी आनाकानी करेंगे और देंगे भी तो पानी मिला कर दे देंगे। अब तो छाछ का प्रसग भी नही रहा, छाछ आज तो देखने को भी कई स्थानो पर कम ही मिलती है लेकिन प्राचीन काल के अन्दर छाछ मुफ्त मे बाटी जाती थी। आज

भारत की वह दशा नही रही कि हर जगह छाछ मिल सके, लेकिन उस समय यह बात नही थी। वे कहते सेठ साहब, अब तक सकोच वश नही भेजा अब आपकी मेहरबानी हो गई है तो भेज देंगे। जब बच्चे को छाछ लेने भेजते तो सेठ साहब नौकर चाकरो के भरोसे नही रहते। वह गरीब घर का व्यक्ति आया है, नौकर उनको गरीब घर का समझ छाछ देने मे आनाकानी नही कर दे, इसलिए स्वय बैठते, उसे अपना भाई समझते, बल्कि अपने बराबर तुल्य समझ कर स्वय छाछ अपने हाथ से देते। एक बर्तन लेकर बैठ जाते और उसके साथ ही पैसो की, रुपयो की थैली लेकर भी बैठते और जब कोई बच्चा छाछ लेने के लिए आता तो उसके हाथ से लोटा ले लेते और उस बच्चे को किसी बहाने से अन्दर भेज देते कि देखो अमुक क्या कर रहा है। और उसके बाद थैली मे से मुट्ठी भर कर रुपये उसमे डाल देते और फिर छाछ भर देते और कहते कि ले जाओ। यह तुम अपने माता पिता को देना, अन्य को नही। वह बच्चा जाकर लोटा अपने माता पिता को देता। वे छाछ खाली करते जब उसमे रुपये निकलते तो वे भागे-भागे जाते, सेठ साहब, सेठ साहब, आपके रुपये इसमे आ गए। सेठ साहब कहते—बोलो मत, ये मेरे नही तुम्हारे ही है। यह मेरे साथ चलने वाला नही है, तुम भी मेरे साधर्मी भाई हो। इस प्रकार उन्होने कइयो का उद्धार कर दिया, कइयो को बराबरी का बना दिया। इस प्रकार का उनका जीवन चल रहा था लेकिन आज का जीवन कुछ और है। कोई गरीब आ जावे, गरीब तो दूर कोई साधु सन्त भी आ जावे तो भी शायद सेठ साहब को ध्यान देने की फुरसत नही मिले। या तो नीचे से ही आवाज दे देंगे कि महाराज आए हैं और उसमे भी महाराज की अलग-अलग कीमत करेंगे। एक सेठजी के दुकान और मकान एक ही जगह थे। ऊपर मकान और नीचे दुकान थी। वे नीचे ही बैठे रहा करते थे। जब सन्त आते तो वे देखते कि

अमुक सन्त आए है तो दासी को नीचे से ही सकेत कर देते, उसको पहले से ही सकेत समझा रखे थे, नीचे से आवाज देते, बाई महाराज आए है रोटी देना, फुलका बैराना। वह भी समझती थी कि सेठ साहब ने फुलका बैराने के लिए कहा है अर्थात् सेठ जी जब एक वचन में फुलका बैराने के लिये कहते तो वह एक ही फुलका देती और जब वे बहुवचन मे फुलका बैराने के लिये कहते तो व; दो या दो से अधिक फुलके देती। इस प्रकार उनकी मानस की यह भेद पूर्ण स्थिति थी। चाहे घर में कितनी ही सामग्री हो, एक क्या कितने ही फुलके बैरा दे तो भी कोई फर्क पड़ने वाला नही है लेकिन फिर भी इस प्रकार की स्थिति इस युग मे चल रही है। आज जो साधु सन्तो के साथ भी ऐसा बर्ताव कर सकते है वे अपने सहधर्मी भाइयो के साथ क्या बर्ताव करेंगे। आज नौकर चाकरो के साथ क्या बर्ताव किया जा रहा है। मैं सुनता हूँ, नौकर चाकरो के साथ समता का बर्ताव नही होता। वे काम बहुत करते है लेकिन फिर भी उनके साथ भेदभाव का बर्ताव होता है, उनके जीवन के साथ खिलवाड किया जाता है जिससे उनके मन के अन्दर विद्रोह की भावना पैदा होती है और जिसके भयकर परिणाम समाज के सामने आ रहे है।

बन्धुओ, यह स्थिति क्या है, क्या इससे जीवन का प्रश्न हल हो सकता है। आज भी इस धरातल पर इस प्रकार की चीजे चल रही है। मालूजी और दूसरे भी ऐसे सेठ साहूकार हुए है जो जीवन मे बहुत कुछ ऊँचे उठे है और जिन्होने समाज का और अपना उत्थान किया है। आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के सामने ऐसा प्रसग आया था। मालूजी आचार्यश्री के पास बैठे हुए थे, उस समय ऐसा जिक्र चल गया कि मालूजी आप तो पैसेवाले है फिर भी आपके सामने पैसे की इतनी कीमत नही, इन्सानियत को आप अधिक महत्व दे रहे है और जीवन का सही अकन कर रहे है।

आचार्यश्री ने कहा कि मालूजी आप तो इस जीवन के अन्दर ही जीवन को सार्थक कर रहे हैं। आप पैसे के पीछे नही बह रहे हैं, आप सम्पत्ति का सदुपयोग करके जीवन की कीमत कर रहे हैं। इस प्रकार जब आचार्यश्री ने कहा तो मालूजी ने उत्तर दिया कि अन्नदाता, मैं क्या कर रहा हू, मैं क्या करने मे समर्थ हू मेरे पास तो कचरा बढ रहा है उसको साफ कर रहा हू। जितना कचरा कम हो जाय उतना ही अच्छा है। वे सम्पत्ति को क्या समझते थे, कचरा! जो सम्पत्ति को कचरा समझ कर चलता है वह कभी भी जीवन के साथ खिलवाड नही करेगा। इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि अरे भाई कुछ धर्म की स्थिति को भी ध्यान मे रखो। मालूजी जैसे व्यक्ति समाज के अन्दर आदर्श रूप मे होते हैं जिन्होने जीवन को पैसे से ऊँचा समझा है, जीवन को सत्ता, सम्पत्ति और अधिकारो से ऊपर समझा है। वे जीवन की वास्तविक परिभाषा को अच्छी तरह समझ चुके हैं।

विवेक से काम लो

यहाँ एक प्रसग याद आ गया। एक श्रावक जो भक्त था, भक्त का मतलब यह है कि वह अपने आप मे निष्ठा रखता था, जीवन की कीमत को समझता था और ब्लैक मार्केट आदि के कार्य न करके सीधा व्यवसाय करता था अत अर्थ की दृष्टि से वह बहुत साधारण था। शहर के बाहर एक बगीचे मे झोपडी बनाकर रहता था। संयोग-वश उसकी पत्नी का देहान्त हो गया वह अपने पीछे एक पुत्री छोड़ गई। वह पुत्री जब बडी होने लगी तो उसे ही संस्कार दिये, और जीवन की कला सिखाई गई। उसने पुत्री से कहा कि हमारा जीवन एक महत्वपूर्ण जीवन है। यह जीवन संसार के विषय भोग के लिए नही है, पशु-पक्षियो की तरह से बिताने के लिए नहीं है। हमें साधना करते हुए चलते रहना है और [illegible]

उम्र बढती है तो शरीर का भी विकास होता है। जब कन्या बडी हुई तो भक्त सोचने लगा कि किसके यहां इसका विवाह किया जाय। किसी के सामने वह विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है, तो पहले पैसे की बात होती है। पैसा कहॉ से लाये ? और कहा उसका विवाह करे ? आखिर मे उसने यही तय किया कि मेरी पुत्री को मैंने इतने सारे सस्कार दिये है तो बिना विवाह के वह ब्रह्मचारिणी का जीवन क्यो न बिताये। अगर उसका यह निर्णय हो जाय तो मेरा जीवन धन्य होगा। मैं इस पुत्री के लिए कोई सौदेबाजी नही करूगा। जैसी स्थिति है उस स्थिति में कोई ईमानदारी से मेरे जीवन का अकन करेगा। यदि किसी ने मेरे जीवन को नही समझा तो मुझे परवाह नही। पिता यह सोचकर निश्चिन्त हो गया। एक रोज एक करोडपति सेठ घूमने की दृष्टि से बगीचे की ओर को निकला। उसका स्वभाव सुन्दर था उसके जीवन की स्थिति वडी पवित्र थी। वह यह जानता था "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।" उसने उस कन्या को देखा वह उस कन्या के गुणो का अकन करता है और उसके जीवन की कीमत करता है। यह सोचकर कि इस झोपडी मे कैसी स्थिति है। वह घूमना छोडकर झोपड़ी के पास पहुचा। उसने सारी परिस्थिति जानी, और परिस्थिति समझने के पश्चात् उसके मन मे आया कि इसके पिता के पास एक समय के भोजन का भी सग्रह नही है लेकिन इसका पिता जीवन के मूल्यांकन को लेकर के चल रहा है और यह सत्ता और सम्पत्ति के पीछे दीवाना नही है। मैं सपदा का मालिक हू। मेरी दृष्टि में अगर जीवन नही रहा और केवल सपदा रही तो मेरा जीवन भी वेकार है। इसलिए मुझे तो जीवन की कीमत करना है इस प्रकार विचार किया और मन मे दृढ विश्वास कर लिया कि इस गुणवान कन्या का सम्बन्ध मेरे पुत्र के साथ हो जाय तो सब प्रकार की सुनिधि प्राप्त हो जाय। इस प्रकार की भावना लेकर अपने स्थान पर पहुंचा और मुनीम से कहा कि उस झोपड़ी मे रहने वाले

के पास जाकर मेरे पुत्र के लिये उसकी कन्या की मागणी करो। इधर सेठ साहब शाम को घर गये तो सेठानी से बात की कि आज घूमने के लिए गया तो एक सुशिक्षित कन्या के दर्शन किये वह कन्या कन्या-जीवन मे शिखर रूप है और अपने पुत्र के लिए उपयुक्त है। इसलिए उस कन्या को इस घर मे लाया जाय ताकि इस घर की शोभा बढ जाय। सेठानी ने कहा कि सेठ साहब आप किस कन्या को लाना चाहते हैं, वह कहा है? सेठजी ने कहा कि उसका पिता शहर के बाहर बगीचे मे झोपडी लगाकर रहता है। वह गरीब व्यक्ति है? सेठानी ने कहा—मेरे पुत्र का सम्बन्ध उसके साथ करना चाहते हैं? क्या ससार मे और करोडपति नही हैं और अन्य कन्याएँ नही है? कुछ तो सोचना विचारना चाहिए। कन्या चाहे कैसी मिले इसकी परवाह नही, लेकिन सोना चाहिए। यह भावना किस की थी? सेठानी की। लेकिन उसके मन मे न तो जाति का अकन चल रहा था और न पैसे का। उसकी दृष्टि सीधी जीवन की तरफ थी। सेठ ने कहा कि मुझे पैसा नही चाहिए, मुझे जीवन चाहिए, उन्होने खूब जोर दिया और कहा कि तुम चाहे कुछ करो मैं अपने पुत्र की शादी इसी कन्या से करू गा। आखिर सेठानी की चली नही। उन्होने जब मुनीम को भेजा तो उस कन्या के पिता ने कहा कि देखिये—आजकल धनवानो और गरीबो की जाति अलग-अलग बनती जा रही है। गरीबो की जाति अलग और धनवानो की जाति अलग। सेठ साहब मेरी कन्या की मँगनी कर रहे हैं, लेकिन मेरे पास देने को कुछ नही है, मिजमानी करने के लिए न होटल हैं न दूसरी चीजे। यहा जयपुर मे बरात आये तो होटलों मे ठहराई जाती है चाहे कितना ही खर्च लगे और जीमने के साथ-साथ बारातियो की कई तरह से और किस प्रकार सार-सम्भाल की जाती है। एक रोज थोडा सा मैंने सुना था उस सुनने से मुझे पता चला है कि पैसे वालो के हाल किस प्रकार से चलते हैं, मगर गरीबो के यहां विवाह के समय

क्या हालत होगी ? ऐसी हालत में प्रश्न उत्पन्न होता है। "गरीबी हटाओ"। मगर यदि हमारा जीवन उस नारे के अनुरूप नही है तो गरीबी हटाने का अवसर जल्दी आना कठिन लगता है। तो उस कन्या के पिता ने भी यही कहा कि मेरे पास तो कुंकू कन्या हाजिर है, मेरे पास देने को एक फूटी कौडी भी नही है। साथ ही उसने यह भी कहा कि बरात लेकर आते है तो जिमाने के लिए भी मेरे पास कुछ नही है। मैं तो पान सुपारी भी नही दे सकता हूं। आप इस तरह की स्थिति से गरीब कन्या के साथ विवाह के लिए आये तो खुशी है। सेठ ने उसी ढग से विवाह किया। कुछ भी लेने की परवाह नही रखी। सेठ ने जीवन की कीमत की थी, पैसे की कीमत नही की। आज इस प्रकार का कोई भाई है जो जीवन की कीमत करे और पैसे की नहीं करे ? बन्धुओं, ऐसी दशा के अन्दर हम जीवन का अंकन कहां करते है ? कैसी समाज की स्थिति बन रही है, आज गुण-वान कन्याओ की स्थिति कैसी हो रही है। इसका गहराई से चिंतन करना है। उस गरीब कन्या के घर से जाने का जब प्रसंग आया तो पिता ने विदाई देते हुए पुत्री को शिक्षा दी कि पुत्री मेरे पास पैसा तो नही है, लेकिन मैं गुणो की शिक्षा देना चाहता हू। जब सुसराल जाय तो वहा जाने के बाद अपनी इस अवस्था को भूलना मत। सुसराल मे मेरी सपदा को पास मे रखना। जितने भी उस घर मे मनुष्य हो, चाहे नौकर चाकर हो उनके साथ मे भाईचारे का बर्ताव करना, पैसे के मद मे किसी का तिरस्कार मत करना, पैसे के पीछे उनकी जिन्दगी की कीमत मत करना लेकिन जीवन के पीछे उनकी कीमत करना। उस कन्या ने हाथ जोडकर कहा, ''पिता श्री, आपके वचन शिरोधार्य है। मुझे और सपदा नहीं चाहिए, आपकी गुणरूपी संपदा ही चाहिए। उसने कहा, "पुत्री तू वहा जा रही है। वे करोड़पति लोग है उनकी दशा को देखकर वहा पर जो गरीब लोग आयें तो तिरस्कार मत करना, मीठे वचन बोलना, जीवन मे उनसे

चरित्र को ऊँचा रखना और मनुष्य को मनुष्य समझकर आत्मकल्याण का रास्ता प्रस्तुत करना। जब इस शिक्षा को लेकर वह करोडपति के घर मे पहुची तो पैसे का अभिमान उसके मस्तिष्क मे नही आया। वह पैसे की दृष्टि से इन्सान की कीमत नही करती—वह सारे जीवन की दृष्टि से उनका मूल्याकन करने लगी, और आनन्द के साथ सेवा करते करते ऐसा कुछ बर्ताव किया कि उस घर मे जितने भी लोग थे उनको अपने वश मे कर लिया। अडोस-पड़ौस के अन्दर रहने वाले जितने प्राणी थे सब के सब आकर्षित हो गये। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति फैलने लगी कि गरीब घराने की कन्या करोडपति के घर मे पहुचकर किस प्रकार से मनुष्य जीवन का अकन करती है। तारीफ के पुल इधर-उधर से आने लगे। सास-सुसर अत्यत प्रसन्न थे। गरीबी और अमीरी का भेद मिटाते हुए उसने अपने जीवन के सौरभ से आस-पास के अधिकाश व्यक्तियो को आकर्षित कर लिया। इन सब बातो को लेकर एक रोज उसकी सासू जी प्रसन्न होकर उससे कहने लगी कि पुत्री ये चाबिया अब तुम सम्हालो। उस वक्त उस पुत्र वधू ने कहा—सासूजीराज,चाबिया तो आपके पास ही रखें। मुझे तो इन चाबियो की आवश्यकता नही, जीवन की चाबिया चाहिए। आजकल की पुत्रवधुए यह बात बोलेगी कि सासूजी, अब आपका बुढापा हो गया है अब तिजोरियो की चाबी न रखे। खोलकर उसको सोप देगी तो ठीक और नही सोपेंगी तो लडाई झगडा होगा। आज अधिकाश घरो की यही स्थिति है। सास-बहू लड रहे हैं, बाप-बेटे लड़ रहे है, भाई भाई लड रहे है। वही सासू तिजोरियो की चाबिया सोपने लगी तो उसने नही ली। सासू जी ने आग्रह किया कि मैं वृद्ध हो गई हू और आगे के जीवन के लिए कुछ करू मुझे तो तुम ऐसी शिक्षा दो कि मैं जीवन की कीमत करू और जीवन क्या है इसको समझने का प्रयास करू। यह सासू जी बोलने लगी। उसने कहा कि तिजोरी की चाबिया तो आप मुझे सौप रही हैं लेकिन मेरी

जो बचपन की आदत है उस आदत के साथ मैं बरताव करूंगी वह शायद आपको पसन्द आयेगा या नही आयेगा। क्या बरताव है तुम्हारा ? सासू जी ने पूछा ! बरताव क्या है, यही है कि मैं अपने पिता के यहा बचपन से बड़ी हुई हूँ, तब तक मैंने अतिथि-सत्कार को नही भुलाया है। कोई भी व्यक्ति आया है उसका स्वागत के साथ में सत्कार किया है। दान देने की आदत भी है। जब आप मुझे तिजौरी की चाबियां सौंप रही है, और घर का अधिकार सम्हला रही है तो कोई व्यक्ति आयेगा तो मेरा हाथ उदार रहेगा। उसमें आपको नागवार तो नही गुजरेगा ? सासू जी को यह ख्याल आया और कहा कि दान देने लगी तो सारी सम्पदा चली जायेगी। उसने कहा कि सासूजीराज, आपने जीवन को नही समझा है और अपनी भौतिक सम्पदा को ही सब कुछ समझा है। सम्पदा यदि लुटा भी दूंगी तो मेरा जीवन तो रहेगा, मुझे जीवन चाहिए सम्पदा नही चाहिए। सेठानी कहने लगी नही-नही मैं इन बातो में आने वाली नही हू। इसके लिए थोड़े ही चाबिया सम्हला रही हू। किसी को देना मत, शर्माशर्मी उसने चाबिया सम्हाल ली,लेकिन वह एक अच्छी चीज नही थी।

एक रोज कुछ ऐसा अवसर बना कि सासूजी कमरे में बैठी हुई अपने घर का कार्य कर रही थी। एक भिक्षुक साधू की पोशाक मे भिक्षा के लिये उपस्थित हुआ। उस भिक्षुक की दृष्टि उस मकान पर गई। करोड़पति का घर था। सासू का कथन भी उसके ध्यान मे था लेकिन पिछले जीवन मे उसने जो शिक्षा ली वह महत्वपूर्ण शिक्षा थी जो कि उसने अपने पिता के यहा प्राप्त की थी। उसके अनुसार उससे रहा नही गया, आखिर अन्दर जो मिष्टान्न आदि सामग्री थी वह पर्याप्त मात्रा मे लेकर साधू को दे दी। वह यह जानती थी कि साधू को जीने के लिए थोडा भोजन चाहिए और मर्यादित वस्त्र चाहिए। साधू पैसा लेता है तो वह साधू नही है

आचार्य प्रवर के चरणों में
हम कोटि-कोटि वन्दन करते !



तारार्चन्द गैलड़ा ट्रस्ट

नं० ४ नागेश्वरराव रोड

मद्रास-१७

परम श्रद्धेय

आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

की

पीयूष-वर्षिणी प्रवचन गंगा

जन-मन के पातक धो डाले।



चम्पालाल सुभाषचन्द कोठारी

C/o ग्रेट मेडिसिन स्टोर

बुलढाना (महाराष्ट्र)

क्योकि पैसा हराम सिखाता है। इसलिए पैसा कौडी तो नही दिया, अत साधू ने वह अन्न ग्रहण कर लिया। उसकी पोशाक तो साधुकी थी किन्तु उसके मन और नेत्र चचल थे, तदनुसार वह उस हवेली को देखने लगा। वह जब इधर-उधर देख रहा था तो उस पुत्रवधू से रहा नही गया और उस पुत्रवधू ने स्पष्ट रूप से साधू को सकेत में कहा कि साधूजी तुम्हारा एक गया, तो साधू भी थोडा-सा बुद्धिमान था, उसने देखा कि मुझे सकेत से शिक्षा दी गई है तो उसने भी वापिस उत्तर दिया कि तुम्हारे दो ही गए। तो उस पुत्रवधू ने पुन उत्तर दिया कि तुम्हारे तो तीनो ही चले गए। आपस मे सकेतो मे ही उनकी वाते हुई। सासू जी कमरे मे वैठी हुई थी। पुत्रवधू को दान देते हुए देख लिया था आगवबूला हो रही थी कि मैंने पहले ही वहू को कह दिया था, कि दान नही देना और आज इसने इस साधूडे को दान दे दिया और दान देने के साथ ही साथ सकेत मे गुप्त वाते भी कर रही है, हाय-हाय यह तो वहुत वडा अकाज हो गया। मैंने पतिदेव को पहले ही कहा था कि ऐसी गरीव घराने की छोकरी नही लाना चाहिए किन्तु पतिदेव नही माने और ऐसी छोकरी को ले आए। सेठानी का मन और मस्तिष्क सारा का सारा दूसरे रूप मे घूम गया। वह सोचने लगी कि अव क्या करना चाहिए, ऐसी पुत्रवधु के विना तो मेरा पुत्र विना शादी के ही रहता तो कोई वात नही थी। ऐसी वहू को मैं कैसे रख सकती हूँ इस प्रकार की अनेक तरह की कल्पनाए करती है किन्तु यह नही सोच पाती है कि इसका निर्णय कर लू, कि उसका सकेत क्या था। साधू जी ने सकेत से क्या कहा और वहू ने क्या सकेत दिया, इनमे क्या भेद है, सकेत का वस्तुत क्या अर्थ है, विना इसका निर्णय किए ही उसने मन मे निर्णय कर लिया और उसके मन मे पुत्रवधू के वारे मे भावना दूसरे रूप मे वन गई और मन में सोच लिया कि किसी प्रकार से इसको समाप्त करना चाहिए। लेकिन समाप्त करने से पहले मैं

साहब की अनुमति लेनी चाहिए। सेठ साहब को बुलवा लिये। सेठ साहब के आते ही उनको आडे हाथो लिया, कहने लगी देखा, मैने पहले ही कहा था कि ऐसे घर की छोकरी हमारे घर के योग्य नही है। इसने तो सारे घर का दिवाला निकाल दिया, एक साधु को कुछ दान दिया और साथ ही साथ गुप्त बाते की। तो सेठजी ने कहा कि अब क्या करना चाहिए ? सेठाणी कहने लगी कि इसको घर में नही रखना चाहिए। सेठजी ने कहा कि इसको पीहर भेज दे। तो बोली कि पीहर भेज देगे तो वहाँ वह सारी बाते खोल देगी और इससे इज्जत खत्म हो जाएगी। तो क्या करना ? क्यो नही इसको समाप्त ही कर दे। सेठ ने कहा कि समाप्त करना तो मेरे हाथ की बात नही है। जब तक पुत्र सहयोग नही दे तब तक इस विषय में अपन क्या कर सकते है। तो कहा पुत्र को भी बुला लिया जाए अपन तीनो एकमत हो जावे। पुत्र को बुलाने के लिए भेजा गया वह भी उपस्थित हो गया। सम्पूर्ण वृतान्त सुना तो वह भी आश्चर्य मे पड गया। कुछ कह नही पाया, मौन होकर खडा हो गया और मनन चिंतन करने लगा कि भगवन् ! मेरे पर कौन-सा धर्म सकट आ गया, पतिव्रता के रूप मे इसको मैने देखा, सीता सती की उपमा दी, और आज भी दे रहा हूं ऐसी कन्या के विषय में इस प्रकार की बात क्यो कर सम्भावित हो रही है। मैं प्रभु के चरणो में हाथ जोड कर इस विषय मे मार्ग दर्शन चाहता हू। वह कुछ समय के लिए स्थिर हुआ। कुछ चिंतन करके अपनी मातेश्वरी और पिताजी से कहा कि आप भी कुछ चिंतन करिए और इस बात की ताकीद मत करिए। आप इस बात का चिंतन करिए कि क्या बात है, किस तरह से यह बात बनी है और उसने जो कुछ कहा तो क्या कहा। सारी बात का निर्णय निकाले बिना सहसा कदम नही उठाना है। तो उन्होने कहा कि हमने सब कुछ निर्णय कर लिया है तब पुत्र ने कहा कि मैं भी कह रहा हूँ, मुझे भी थोडी देर

सोचने दीजिए। वह सोचने की स्थिति मे खडा हो गया। माता-पिता ने सोचा कि पुत्र गुणवान है, उसकी सहमति के बिना हम कोई कार्य नही कर सकेंगे, आखिर यह सहमत होगा तभी काम बनेगा यह समझ कर चुप हो गए।

उधर चिंतन चल रहा है और इधर आपका दस बजे का समय हो गया है। यहाँ भी अभी जीवन का प्रश्न चल रहा है, आप चाहते हैं कि यह प्रश्न जल्दी हल हो जाय और मैं भी चाहता हूँ कि जल्दी हल हो जाय, लेकिन जीवन को समझने के लिए, कुछ प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार की स्थिति आपके धैर्य के साथ बध गई है। देखिए उस बहिन की स्थिति क्या बनती है, पति क्या सोचता है और सास और ससुर क्या सोचते हैं यह भविष्य के गर्भ मे रहने दीजिए। अभी जो वर्तमान मे प्रश्न यहाँ चल रहा है, वह है आज के युग मे जीवन की क्या आवश्यकता है। सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य जीवन के बिना बेकार हैं और जीवन की कीमत करने के लिए, जीवन के स्वरूप को समझने के लिए, जीवन की परिभाषा करने के लिए जब आप आगे बढोगे तो ही ये सत्ता, सम्पत्ति और कर्तव्य हितावह हो सकते हैं, नही तो ये उल्टा मार्ग धारण कर सकते है, उन्ही भावनो के साथ कहा—

जय जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक नें तू धणी,
अब तोसूं गाढी बणी, प्रभू आशा पूरो हम तणी।
मुझ मेहर करो चन्द्र प्रभू जगत जीवन अन्तर्यामी,
भव दुख हरो सुनिए अर्ज हमारी, ओ त्रिभुवन स्वामी॥

ऐसी भावना के साथ जब हम अपने जीवन को [illegible] [illegible], जीवन के स्वरूप को समझ जायेंगे, सुन्दर जीवन जो [illegible] [illegible] भावना के साथ इस प्रसग को समाप्त करता हूं।

पन्ना समिक्खए धम्म —उत्तराध्ययन

अपनी निर्मल बुद्धि-प्रज्ञा से धर्म की परीक्षा-समीक्षा करनी चाहिए।

---

६ | सम्यग् निर्णय कीजिए

श्री सुविधि जिनेश्वर वदिये हो,
प्रभुता त्यागी राजनी हो,
लीधो सजम भार।
निज आतम अनुभव थकी हो,
पाम्या पद अविकार।…श्री….

बन्धुओ,

यह हम श्री सुविधिनाथ भगवान् की प्रार्थना कर रहे हैं। भगवान् के नाम का सकलन भी किस ढग से बना है कि जिसमें यथार्थ अर्थ का द्योतन हो रहा है।

भगवान् सुविधि अथवा सु-विधि— इन शब्दो के साथ यदि सम्बन्ध जुड़ता है तो उससे प्रभु के अनुरूप अर्थ का द्योतन होता है। सुविधि यानि: **सुष्टु सुन्दराविधिर्यस्य स सुविधिः**। इसका दूसरा अर्थ है सुन्दर विधि, अगर यह सुन्दर विधि हमारे जीवन में प्रवेश कर जावे तो इस जीवन की तमाम समस्याएँ हल हो जावे। आज का मानव चल

अवश्य रहा है, गति उसकी रुकती नही है, प्रयत्न जरूर, चालू है लेकिन वह विधि के साथ है या अविधि के साथ है यह सोचना है ।

अगर विधिपूर्वक मनुष्य के सारे प्रयत्न चल रहे है, विधि के साथ वह पुरुषार्थ कर रहा है, विधि के साथ ही जीवन की तमाम क्रियाएँ कर रहा है, तो उसके जीवन की समग्र शक्तियाँ विकसित हो सकती हैं ।

जव विधि के अन्दर भी वह शक्ति है तो जिस व्यक्ति के जीवन मे सुविधि आ जाए उसका तो कहना ही क्या ? उसका जीवन परमात्मा शक्ति के रूप मे परिलक्षित हो इसमे कोई भी आश्चर्य नही ।

अव हमे यह सोचना है कि इस साधनाकाल मे अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिये सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना के प्रसग मे हम किस तरह से तत्पर हो सकते हैं ? किस तरह से हम अपने जीवन को सुसस्कारित कर सकते है जिसका कि सकेत आपको कुछ समय से मिल रहा है । और यह सकेत अपुट्ठवागरणा-उत्तराध्ययन सूत्र चतुर्थ अध्ययन की जो प्रथम गाथा है उसकी व्याख्या के रूप मे कुछ दिनो से मैं आपके सम्मुख कर रहा हू । प्रभु की इन उद्घोषणाओ को सुनने और समझने का प्रयास आप कर रहे है ।

भगवान ने फरमाया कि **"असखयं जीविय मा पमायए"** मानव, तुम्हारा जीवन असस्कृत है, तुम प्रमाद मत करो । वीतराग देव ने अपने केवलज्ञान के उस दिव्य सूर्य के प्रकाश मे मनुष्य का जो जीवन देखा है उसके अनुरूप ही उन्होंने मानव को सम्बोधित करते हुए उक्त वचन फरमाये हैं ।

अन्तर में झाँको

यह सम्वोधन समुच्चय है चार तीर्थ के लिए है इसमे साधु, साध्वी भी आ जाते हैं और तो क्या महान—प्रतिभा सम्पन्न

नही है । अव हमारे से वढकर कोई वक्ता नही है, अब हमारे से वढकर कोई विद्वान् नही है, मैं तो सव कुछ वन गया हू, अव कुछ करना धरना नही है तो उसके लिये भी भगवान का यह सम्वोधन है कि हे साधु, हे साधक, तू चार ज्ञान के धारक उस महाज्ञानी गणधर के तुल्य तो नही वन गया है अभी । उसको भी जव भगवान् ने यह कहा है कि—

असखय जीविय मा पमायए, तू तो उससे वहुत नीचे की साधना के स्तर पर है, तू क्यो अभिमान करने लग गया है, अभी तेरा जीवन भी असस्कारित है, इसे सस्कारमय वनाने मे प्रमाद मत कर ! लापरवाह मत वन !

तो इस तरह अहकार की भावनाएँ मानव मे आना सहज है। ये भावनाये मानव स्वभाव के अनुसार साधक के अन्दर भी प्रवेश कर सकती है क्योकि वह भी मानव है । जो श्रेष्ठ साधक है, उसमे सहसा भले ही प्रवेश न करे किन्तु उनके भी अज्ञात मस्तिष्क मे ये सस्कार किसी न किसी रूप मे अपना प्रभाव डालही देते हैं अत उस अज्ञात मस्तिष्क के सस्कारो को संस्कारित करने के लिए सम्वोधन है क्योकि जीवन मे अहकार के अनेक प्रवेश द्वार होते है। कभी तपश्चर्या के प्रसग पर साधु तपश्चर्या करता है तथा कभी मासखमण करने वाले या अधिक तपश्चर्या करने वाले तपश्चरण करते हैं उस समय भी अभिमान की मात्रा आना स्वाभाविक है, ऐसी स्थिति मे वह भी यह सोच ले कि मेरे समान कोई तपस्वी नही है, मैं सबसे वडा तपस्वी हू, मेरे सामने कोई वोल नही सकता, वस वोलो मत, मैं कहू जिस तरह से करो, इस तरह की धमकी का प्रयोग साधारण लोगो पर करता है तो वीतराग की वाणी के अनुसार वह चाहे साधु है, तपस्वी है, लेकिन जीवन मे सस्कार पूरे नही हुए हैं, उसको भी असस्कारित जीवन की श्रेणी मे रखा जा सकता है । वैसे ही श्रावक और श्राविकाये अपने जीवन को

लेकर चल रहे है, अपने-अपने क्षत्र के अनुरूप, अपनी-अपनी शक्ति के साथ वे धार्मिक कार्य भी करते है। दान, शील, तप, भावना का प्रसग भी उपस्थित करते है,लेकिन दान देते समय कभी मन के अन्दर अहकार की प्रवृत्ति आ गयी, कि मै बड़ा दानी हू, मेरे समान कौन दान दे सकता है ? मैं इतना उदार हू— अगर ये भावनाये प्रवेश कर गयी तो वह भले ही श्रावक की भूमिका मे हो, लेकिन वहा भी असस्कारित जीवन का प्रवेश हो गया। और उसका भी जीवन सस्कारित होने की दिशा में आगे बढने से रुक गया।

शील की दृष्टि से भी शीलव्रत ग्रहण करता है कि वा ब्रह्मचर्य की मर्यादा करता है, लेकिन उसमे भी बडी सावधानी रखने की आवश्यकता है। उसमें भी यदि अहकारी वृत्ति का प्रवेश हो गया तो हम विधि से भटक जायगे क्योकि शील व्रत अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया है उसमे अह आना स्वाभाविक है। तलवार की धार पर चलना सहज है लेकिन वीतराग देव की बताई विधि के साथ शील की धार पर चलना कठिन है। इसीलिए कभी कभी आध्यात्मिक रस में बहने वाले कवि कुछ कविताओ के प्रसंग से अपने अन्तर नाद को व्यक्त कर देते है—

"धार तलवार नी सोहिली
दोहिली चौदवां जिन तणी चरण सेवा"

ये चौदहवे भगवान की प्रार्थना की कड़िया है। चौदहवे भगवान की बात कहो, नौवे भगवान की बात कहो या चौबीस तीर्थंकरो की बात कहो, उनका एक ही स्वर है और एक ही विधि है। उनका मौलिक दृष्टि से मौलिक तत्वो का एक ही तरह का विश्लेषण है। यह दूसरी बात है कि साधक, युग को देखकर साधना के नियमो मे कुछ कमीबेशी या कुछ बढ़ोतरी कर सकते है, लेकिन मौलिक तत्वो के विषय मे कोई अन्तर नही आता। ऐसे उन परमात्मा के विधि विधान के ऊपर चलना और शीलव्रत की धार पर चलना यह तलवार की धार से भी कठिन

है। तलवार की धार पर कोई मनुष्य नहीं चल सकता, लेकिन कदाचित् बाजीगर अथवा अभ्यास करके कुछ पग चलने की कोशिश करे, किन्तु उन तपस्वियों की धार पर चलना उससे भी दुष्कर है। ठीक वैसे ही परमात्मा की विधि पर चलना, [illegible] पर चलना और वह भी संयम से युक्त, तलवार की धार से भी अधिक कठिन है। इस प्रकार की दुष्कर स्थिति में बुद्धि से [illegible] गमन करना तथा उसमें भी अहंकार बुद्धि का [illegible] ही साधक की साधना है, यही सम्यग् निर्णय है।

का काम भी चालू हो सकता है किन्तु उस तप के पीछे यदि किसी प्रकार की कामना चल पडे तो वह कामना विधि की नही होगी। प्रभु के वचन है—

नो इह लोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नो कित्ति-वण्ण-सद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा
नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा

इह लोक के लिए तप न करे, परलोक के लिए भी तप न करे, यश-कीर्ति की कामना से भी तप न करे, किन्तु सिर्फ कर्म निर्जरा-आत्म शुद्धि के लिए तप करे।

मैं कभी कभी सुनता हूँ- इधर का मुझे पता नही, लेकिन मारवाड़ के अन्दर बोलते है कि महाराज धमक तेला किया। मैंने एक दिन धमक तेले की व्याख्या पूछी कि धमक तेला क्या है? तो वे कहने लगे कि जो बहिन तेला करती हैं वह घर वालो को धमकाती है कि इतना रुपया दो तो पारणा करूँ, अमुक जेवर बनवाओ तो पारणा करूँ। इस तरह मे रुपया मांगने के लिए अगर धमक तेला करते है तो वह तेला भगवान की विधि के अन्दर नही है।

इसी प्रकार "मैं यदि अधिक तप करूँ तो मुझे अधिक स्वर्गीय आनन्द मिलेगा" इस भावना से भी तप नही करे।

मेरी कीर्ति होगी, लोग मुझे धन्यवाद देंगे, चारो तरफ मे तारीफ होगी- इस भावना से भी तप की स्थिति का प्रसंग उपस्थित नही करें अपने मन मे भी ऐसी भावना न करें। यदि तपस्वी की तारीफ अन्य लोग कर रहे हैं तो वे अपने जीवन मे सम्यग्दृष्टि जीवन के लक्षण का पालन कर रहे है वह तो उनका स्वभाव है तथा सौकिक दृष्टि से धन्यवाद देना उनके लिए आवश्यक है, लेकिन तप करने वाले को कोई कामना नही करनी चाहिए कि लोग मुझे धन्यवाद

दे और मेरी यशोगाथा चारो तरफ फैले। इस भावना से तप नही करे। तो किसके लिए करे ? प्रभु का शब्द है कि नन्नत्य निज्जर ट्ठयाए' एकान्त निर्जरा के लिए तप किया जाये। इसका मतलब यह है कि जो अनादिकाल से आत्मा के साथ कर्म बन्धन है, उनको हटाने के लिए, तप करे। बद्ध कर्म-दलिको को देश से हटाना निर्जरा है। तो उस निर्जरा के लिए दूसरा शब्द मैं कहू —"आत्म शुद्धि के लिए" अगर आपके व्यवहार के लिए समझे तो जीवन की शुद्धि के लिए जीवन को सस्कारित करने के लिए तप की स्थिति रहे। इस प्रकार जीवन के लक्ष्य के मोड को लेकर इस चातुर्मास के अन्दर अपने जीवन का हमे अवलोकन करना है और इस जीवन को समझना है कि हम किस ओर जा रहे है। हमारे जीवन मे पवित्र सस्कार आये या नही ? क्या हम अभी तक उस अनादिकाल के सस्कारो के साथ बह रहे है। क्या हमारे जीवन मे असस्कार ही चल रहे हैं, या कुछ सुन्दर सस्कार पनप रहे हैं— इसका निरन्तर ध्यान रखना, चिन्तन करना, यह चातुर्मास का सुन्दरतम उपयोग है।

चातुर्मास में कर्तव्य

चातुर्मास मे क्या करना चाहिए, और क्या नही इसका कुछ सकेत आपको सन्त दे रहे थे और शायद उस सकेत मे रात्रि भोजन नही करने का सकेत भी मिला होगा। या नही मिला ? मिला। जो अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहते है, सुन्दरतम और सस्कारित करना चाहते है वे तो रात्रि भोजन की वृत्ति को अपने जीवन मे रख ही नही सकते। यदि रात्रि भोजन चलता है तो समझना चाहिए कि अभी हम प्रभु की नुविधि के अन्तर पेटे मे नही आये। एक दृष्टि से देखा जाये तो जैनियो के बच्चे बच्चे को रात्रि भोजन नही करना चाहिए। क्योकि आप भी रात्रि भोजन करेंगे तो फिर जो असस्कारित

जीवन वाले व्यक्ति है उनमें और आपमें क्या अन्तर रह जायेगा ? रात में कितने जन्तु, कितने प्राणी और फिर बिजली के प्रकाश के कारण कितने पतगे इकट्ठे होते हैं किस तरह खाने में आते हैं। मैं समझता हूँ कि रात्रि भोजन करने वाले भाई भोजन की तरफ शायद ही ख्याल रखते है। हां प्राय ध्यान तो इधर उधर देखने में रहता है और भोजन के साथ न मालूम कितने चलते फिरते जीवो को पेट में डाल देते हैं, और उनका क्या परिणाम होता है, उससे असंस्कारित जीवन का कुछ प्रदर्शन तो होता ही है लेकिन साथ ही साथ उसका वर्तमान जीवन भी खतरे में पड़ सकता है। आज जितनी बीमारियाँ हो रही है और डाक्टरो को तरह तरह के इलाज करने की दृष्टि से सोचना पड़ रहा है इसके अनेक कारण हो सकते है लेकिन एक कारण यह भी है कि रात्रि भोजन के समय जहरीले जन्तुओ का पेट में प्रवेश होने की सभावना रहती है और उससे अनेक रोगो की उत्पत्ति की भी सभावना रहती है। यदि वर्तमान जीवन को सुन्दरतम रखना चाहते है तो रात्रि भोजन के लिए वहुत ज्यादा ध्यान रखने की आवश्यकता है। जहाँ तक पूरे समाज का प्रश्न है उसकी दृष्टि से दिगम्वर समाज के भाइयों के अन्दर यह संस्कार ज्यादा सुनने मे आते है। उनमें रात्रि भोजन का प्रसग प्रायः नही पाया जाता है। वहा उन्हे इस विषय के प्रारम्भ से ही सस्कार दिये जाते हैं।

छोटे वच्चे भी इसका खयाल रखते है। जव कि मैं छोटा था, स्कूल में पढ़ रहा था, उस समय एक पाटनी गोत्र का विद्यार्थी मेरे साथ पढता था। शुरु में सूर्यास्त होने के भय से वह स्कूल से जल्दी छुट्टी लेकर भाग कर घर जाने लगा तव मैंने उससे पूछा कि इतनी जल्दी छुट्टी लेकर घर क्यो जा रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि भोजन करने के लिये जा रहा हूं। फिर मैंने पूछा, अभी क्यो जा रहे हो, अभी तो स्कूल का समय है। उसने उत्तर दिया—दिन

थोडा है, सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना है। मैं जैनी हू न।

देखिये—एक तो वह जैनी था और एक मैं जैनकुल मे जन्म लेने वाला था, अजैनी जैसा था, क्योकि उन गांवो मे इस तरह के सस्कारो की प्राप्ति थी नही। क्या कर्तव्य है जैनियो का इसकी भी जानकारी नही थी। मैंने उसे पूछा—रात मे भोजन क्यो नही करते? उसने उत्तर दिया "मेरी मा ने कहा है कि रात्रि भोजन करूँगा तो मेरे सीगडे उग जावेंगे।"

वच्चे को मां ने इसी तरह मे समझा रखा था। छोटे वच्चे भी इतना ध्यान रखते हैं इस समाज मे, सूर्यास्त से पहले ही भोजन करने के लिए दौड कर जाते हैं, और एक आप हैं इतने वृद्ध और नौजवान होकर भी इसका विचार इने-गिने ही रखते होगे!

आप मनुष्य की वात छोडिये। जो अनजान हैं, जिनको हम अपने से कही वहुत कम ज्ञानवाला मानते है, उन पक्षियो को ही लीजिये। चिडिया है, कवूतर है ये रात में चुग्गा नही चुगते।

तो यह रात्रि भोजन नही करने का प्रसग आप लोगो के सामने उपस्थित कर रहा हू जो और किसी छोटे मोटे ठिकाने मे नही रहते, गावो मे नही रहते, वल्कि राजस्थान की राजधानी मे रहते है, जयपुर जैसे नगर मे रहते हैं। जहां मेरा जन्म हुआ वहां के गावो के लोग भले ही न समझे, पर राजधानी के नागरिक तो समझते हैं और उनमे भी जयपुर के जौहरी घरानो के जैनी, जवाहरात का परीक्षण करने वाले। फिर क्या आपने जीवन का परीक्षण नही किया? यह कैसे सम्भव हो सकता है?

तो मैं यह सोच रहा हू कि राजधानी के भाई और वहन वडे समझदार और तेजस्वी हैं। धर्म ध्यान और चिन्तन मनन मे काफी रुचि रखने वाले हैं। यहा का युवावर्ग भी वहुत जागृत और लगनशील है। इन सव वातो को देखते हुए इस प्रसग पर क्या मैं यह मान कर चलू कि इस नेत्र आप सव भाई वहन अभ्यास

के तौर पर ही सही, १२ महीने के लिये रात्रि भोजन नही करेगे ऐसी प्रतिज्ञा करने को तत्पर होगे ? अगर आप ऐसा कर लेते है तो चातुर्मास काल मे बीच-बीच में आवश्यकता हो तो मुझे यह कहने का भी बड़ा अच्छा अवसर मिल जावेगा कि जयपुर के भाई बहुत जागृत हैं उन्होने एक वर्ष के लिये ही सही, रात्रि भोजन न करने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर भी कदाचित किसी को कुछ कमजोरी अनुभव हो रही हो तो, कम से कम आज चातुर्मास के प्रारम्भ का दिवस है, आज से लेकर चातुर्मास समाप्ति काल तक के लिये तो रात्रि भोजन नही करना, ऐसी प्रतिज्ञा आप करेंगे, क्या ऐसा विश्वास रक्खू ?

तो मैं दानशील तप और भावना की बात कह रहा था। चार महीनो में आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें, रात्रि भोजन का त्याग करे, किसी भी प्राणी को दुखः न दे, कालाबाजारी न करे। झूठ न बोले, किसी प्रकार की चोरी न करें और इन चार महीनो मे कुछ परिग्रह ममत्व को भी कम करे। इस तरह से अगर कुल मिलाकर १८ ही पापों के त्याग की भी भावना जगेगी तो इस चातुर्मास का रूप कुछ और ही बन जावेगा। यह संकेत चतुर्विध सघ के अग के रूप में आपको मिल रहा है। यह सकेत केवल मेरा ही नही है, भगवान महावीर का है। भगवान् ने स्पष्ट संकेत दिया है :—

असंखयं जीविय मा पमायए।

मैं भी निरन्तर वही बात कहता आ रहा हूं, बार-बार दोहराता जा रहा हूं कि तुम्हारा जोवन, असस्कृत है, इस असस्कृत जीवन में प्रमाद मत करो। इस स्थिति को हटाने के लिये यह सकेत दिया जा रहा है, इस स्थिति को आप स्वय अपनी बुद्धिमत्ता से चिन्तन करके, इन सस्कारो को परिमार्जित करेगे तो जीवन की स्थिति को समझने का अभ्यास कर पावेंगे।

सम्यग् निर्णायक जीवन है

यदि आप अपने जीवन की अन्तरतम परिभाषा को समझने का प्रयास करे और परिभाषा के साथ जीवन को माँजने की कोशिश करे, तो कृतकृत्य हो सकते हैं। मैं जीवन की परिभाषा की दृष्टि से कथन कर रहा हू। इस जीवन को समझने के लिये एक और परिभाषा के द्वारा इसे स्पष्ट कर दू

सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज् जीवनम्

जो सम्यग् निर्णायक, अर्थात् सम्यग् प्रकार से निर्णय करने वाला है, और समतामय है, वह जीवन है। यह तो हुई शब्दार्थ की स्थिति। अब इसकी व्याख्या करे तो प्रश्न होता है, सम्यग् निर्णायक का क्या तात्पर्य ? और सम्यग् निर्णय किसका किया जावे ? इस शब्दार्थ को भी सस्कारित जीवन के साथ समझना है। निर्णय किये विना उस वस्तु का स्वरूप सामने नही आता।

जब निर्णय का अभाव रहता है तो मनुष्य पथभ्रान्त बन जाता है और अज्ञानवश क्या क्या कर गुजरता है, और करते करते उसकी स्थिति कहा तक पहुच जाती है, उसका एक रूपक पहले मैं रख गया था और उसमे बताया गया था कि जहा उस सेठानी ने अपनी पुत्र वधू को एक साधु को दान देते हुए देखा और दान देते हुए देखने के साथ ही साथ जब उस पुत्रवधू के मुँह मे साधु को सकेत मिला और साधु को उसने यह कहा कि तुम्हारा एक चला गया तो उत्तर मे उस साधु ने कहा कि तुम्हारे दो गये। पुन बहन ने कहा तुम्हारे तीन गये।

इस बात को लेकर सेठानी के मन मे भ्रान्ति उत्पन्न हो गई। अपनी पुत्रवधू के प्रति अविश्वास करके वह उसको मृत्यु तक के मुँह मे पहुँचाने का प्रयास कर रही है।

उसने विना निर्णय किये ही अपने पुत्र को बुलवा लिया और

उसके सामने भी यह घटना रक्खी। पुत्र भी असमंजस में पड़ गया। वह सोचने लगा कि मेरी माता क्या कह रही है ? जिसको मैंने इतने दिनो से समझा हैं, जिसके जीवन को मैंने परखा है। आज वह मेरी धर्मपत्नी क्या इस प्रकार बुरे आचरण वाली बन सकती है ? यह मेरी समझ में नही आता। लेकिन उधर मां जिस पर मैं श्रद्धा रखता हूं तो क्या वह झूठ बोल सकती है ? मैंने इस माता की कुक्षी से जन्म लिया है, इसी माता की गोदी में पला, पोसा और बड़ा हुआ हू। माता ने मुझे हर तरह की अच्छी शिक्षा दी और आज तक मै माता का बडा आदर करता आया हूं। आज क्या वह माता मुझे धोखा दे सकती है ? या झूठी बात कह सकती है ? यह भी बात मेरी समझ में नही आती। वह किं कर्त्तव्य विमूढ़ सा हो गया। कुछ सोच नही पा रहा था। कुछ क्षण मौन खड़ा रहा।

तब माता ने अपने पतिदेव को सम्वोधित किया कि सेठजी ! अपने पुत्र का मुंह खुलवाइये। यह मौन क्यो खड़ा है ?

सेठ ने पुत्र को सम्बोधन किया : गोविन्द, क्या बात है ?

किस उलझन में उलझ गया है ? तुम्हारी माता ने जो निर्णय लिया है वह निर्णय ठीक है अतः तू उसके अनुसार काम करने को तत्पर है कि नही ?

पुत्र कहने लगा—पिताश्री, मैंने आज दिन तक आपकी आज्ञा शिरोधार्य की है लेकिन आज मेरे मन में न मालूम किस प्रकार की उलझन पैदा हो गई है ? उसको सुलझा नही पा रहा हू। किसी निर्णय और निश्चय पर नही पहुँच पा रहा हूँ, और विना निर्णय के मै कैसे क्या करूँ ? आप आज्ञा दे रहे हैं और इसके अन्दर सहमति प्रकट करूँ यह भी मेरे गले नही उतर रही है, मेरा दिल नही मान रहा है और मै इन्कार करूँ कि आपकी पुत्रवधू ऐसा नही कर सकती तो भी मेरा दिल नही मानता ? अव कैसे करूँ ? और क्या करूँ ? आप ही वताइये।

तब फिर सेठ ने कहा—कि देखो भाई मैंने अपनी समझ के अनुसार सोच समझ कर तुम्हारा विवाह किया। इस कन्या को मैंने सुलक्षणा और देवी के रूप मे देखा, सुशील समझा, पवित्र आचार वाली समझा, तब तो तुम्हारी माता से विरोध मोल लेकर भी और पैसे का लालच भी छोडकर तुम्हारे साथ इसका विवाह किया। और मुझे आज दिन से पहले तक किसी भी प्रकार का विचार नही था, लेकिन जब कि तुम्हारी माता कह रही है कि मैंने प्रत्यक्ष देखा और प्रत्यक्ष कान मे सुना, कि इसने साधु को पहले तो माल वहराया और साथ ही साथ ऐसे सांकेतिक शब्दो मे वार्तालाप कर रही थी इस वार्तालाप की स्थिति को जब सुना तो मेरा मन भी साक्षी देने लगा। कि हो सकता है यह स्त्री कुछ इस तरह की हो अन्दर मे कुछ और हो और ऊपर से कुछ और दिखती हो। इसलिये जो तुम्हारी माता कह रही है उसे करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

बन्धुओ, बहिनो पर लान्छन लगाना सहज है लेकिन बहनो के गुणो को लेकर जीवन को विकास करना दुस्वार है। इस बहन के ऊपर जो कुछ लाछन की स्थिति बन रही है। यह सिर्फ भ्रान्ति के कारण बन रही है। इस बहन के जीवन मे कुछ भी मलिनता के भाव नही है फिर भी सासूजी का मस्तिष्क दान देने से भटक गया उन्होंने इनकारी कर रखी थी कि तू किसी को दान मत देना। पर वह अपने जीवन के संस्कारो के कारण, दानशील तप और भावना के महत्व को समझती थी इसलिये उसने साधु को सात्विक दान दे दिया। इसके कारण उसकी सासूजी गरम हो गई और उस गरमी मे तननना कर वह और साधूजी के बीच हुए सांकेतिक शब्दो को वह पकड लेती है। इसके मन मे विचार गहराई से घर कर लेते है कि इसने साधु के साथ गुप्त बात की इस गुप्त बात मे क्या अर्थ छिपा है?

सभी का कर्तव्य तो यह था कि इसका निर्णय करते। सासूजी खुले रूप से तत्काल बहू से पूछती कि तुम बताओ साधु के साथ तुमने साकेतिक शब्दो में क्या वात की ? क्या एक गया और क्या दो गया और क्या तीन गया ?। इसका खुलासा करो। अगर सासू यह खुलासा उसी समय माग लेती तो इस तरह का उपद्रव नही होता। पर उस सासूजी की बुद्धि गुस्से मे और दूसरी स्थिति में परिणत हो जाने से निर्णय न कर पाई। उसका जीवन असस्कारित था। जिसके मस्तिष्क में कुछ सस्कार आते है। किसी की कभी वात हो तो खुले दिल से पूछ लेते हैं, निर्णय कर लेते हैं। कोई बात किसी भी रूप मे हो, किसो भी व्यक्ति ने किसी भी रूप में कही हो, चाहे पक्ष मे कही हो या विपक्ष मे चाहे इस विषय मे अमुक के मार्फत बात आई हो, पर निर्णायक बुद्धि रखने वाले प्रामाणिक व्यक्ति का काम होता है कि वह उसका खुलासा सम्बन्धित व्यक्ति से सीधे पूछ कर ले। अमुक व्यक्ति जिसकी मार्फत बात आई हो वह कितना ही प्रामाणिक हो उसकी बात पर भी ध्यान न देकर सीधे उसी यक्ति से स्पष्टीकरण कर लेते है कि क्या आपने अमुक बात मेरे बारे में कही है ?

जिससे पूछा जाय उसका भी कर्तव्य होता है कि वह भी बिल्कुल नि:सकोच भाव से स्पष्ट कहे, नग्न सत्य के रूप मे कहे तो दोनो संस्कारित कहे जा सकते है लेकिन ऐसा नही होता है और असस्कार के वशीभूत होकर और विद्वेष करने वालो के साथ ऐसी भावना पैदा कर लेते है जिससे रात दिन कर्मबधन होता रहे—यह मेरा विरोधी है, यह मेरे प्रति ऐसी भावना रखता है, चाहे रखे या नही रखे जिसके ऊपर शका हो जाती है, वह किसी से बात कर रहा हो तो भी यही शंका रहती है कि यह मेरे ही विषय में बात कर रहा है। इस प्रकार इन बातो मे पड़कर अपने जीवन को असस्कार से असस्कार-तम दशा मे ले जाता है लेकिन जीवन का परिमार्जन नही कर पाता

है तो बन्धुओ इसकी प्रत्येक व्यक्तियो को सावधानी रखनी चाहिए, यह प्रत्येक व्यक्ति का प्रसग है, प्रत्येक समाज का प्रसग है, राष्ट्र का प्रसग है। आजकल कई व्यक्तियो को इसी मे मजा आता है कि किस को कितना भिटा सकते है, कितना लडाई झगडा करा सकते है। जिनके जीवन मे सस्कार होते है वे निर्भयता के साथ उसकी जाच करते हैं और जाच करके उसका निर्णय निकालते हैं। नही तो कभी भी लापसी का जहर बन जाता है। एक सेठ जी ने वैद्यराज की दवा ले रखी थी और उस शहर मे प्राचीन प्रथा की दृष्टि से एक बड़ा जीमनवार का प्रोग्राम था। जीमनवार करने वाले व्यक्ति के परिवार ने पचो को बुलाया और उनकी सलाह से सब कुछ तय किया। मन मे सोलह सेर घी डलवाया। उस सेठ ने भी खुली तरह से परिवार के सारे सदस्यो को न्योता दिया। जिसे सिगरी न्योता कहते हैं। तो वे सेठ साहब जिन्होने वैद्यराज की दवा ले रखी थी उनका भी मन ठिकाने नही रहा और सोचा कि ऐसी लापसी खाने को कब मिलेगी ? इसलिए हमे भी आज लापसी जीमने के लिए जाना है। जाना तो है लेकिन वैद्यराज की राय इस बारे मे ले लेनी चाहिए। इस भावना से कपडो से सजकर वैद्यराज जी से पूछने के के लिए दरवाजे मे खडे हो गये सयोग से उसी रास्ते से वैद्यराज जी शीघ्रगति से जा रहे थे। सेठ साहब ने वैद्यराज को देखकर उनको कहा कि ठहरो, ठहरो आज गाँव मे जीमनवार है। और गुटकी लापसी है। मैं जाऊँ या नहीं। वैद्यराज जी बड़े जरूरी कार्य से जा रहे थे इसलिए उन्होने जाते जाते कहा कि लापसी तो जहर है। सेठ साहब ने सोचा कि लापसी जहर है और जहर की लापसी खाने से तो मनुष्य मर जाता है, तो लापसी जब मेरे लिए जहर है तो मेरे परिवार वाले खायेगे तो उनके लिए भी जहर ही होगी। सेठ साहब पीछे लौट कर घर मे आये और अपने परिवार के सदस्यो से कहा कि लापसी तो जहर है अत. जीमने मत जाओ। तब

परिवार के सदस्यों ने कहा कि पिताजो जब आप हमको लापसी जीमने के लिए रोक रहे है तो इस गाव के अन्दर हमारे अन्य सबधी भी बहुत है, वे चले जायेगे तो मर जायेगे इसलिए आपकी आज्ञा हो तो उनको भी बता आये। तो सेठ ने अनुमति दे दी। बाल-बच्चे भागे और कहा कि लापसी जहर है इसलिए जीमने मत जाना। वे परिवार वाले रुके उन्होने सोचा कि हमारे और भी तो परिवार हैं, तो उन्होने अन्यो को सूचित किया। इस तरह से सारे शहर में सन्नाटा छा गया और जो सबके सब तैयार हुए वे सबके सब रुक गये। बेचारे जिस व्यक्ति ने सारा माल बनवाया वह व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यो को लेकर द्वार-द्वार घूमता है और लोगों से कहता है पधारिये,पधारिये तो कोई कुछ नही कहता सिर्फ हा साहब, हा साहब कह देते है और इसके अलावा कुछ नही कहते और जाता भी कोई नही। इस प्रकार वे परिवार के सदस्य हैरान हो गए और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए। पचायत बुलाई और कहा कि देखिए साहब आपके कहने से सब तैयारी की, सब कुछ माल तैयार हो गया परन्तु कोई नही आ रहा है और कोई उत्तर भी नही दे रहा है सब कह रहे है हा साहब, हा साहब—इसका निर्णय तो कीजिये कि जीमने के लिए क्यो नही आ रहे है ? तो पच भी एकत्रित हो गये लेकिन किसी भी पच मे पूरा निर्णय करने की शक्ति नही। पच भी कई तरह के होते है। आजकल तो पचायते प्रायः समाप्त हो गयी है। गावो मे कही-कही बाकी रही है। आचार्य श्री कहते थे कि निर्णय करने वाले पच भी कई तरह के होते हैं। जो सभी सही निर्णायक नही होते। जो एक तरफा निर्णय करते है। तो वे सभी एकत्रित पच सोचे जा रहे है निर्णय कोई नही कर पा रहा है, बेचारा वह माल बनाने वाला हैरान हो रहा है। किसी ने कोई निर्णय नही दिया और सारे इधर-उधर देख रहे थे। उनमे मे एक निर्णायक व्यक्ति निकला और उसने सच्चाई के साथ कहा कि

भाई ! देखिये हमने पचायत करके आपको जीमनवार करने की दृष्टि मे सब कुछ तैयारी करने के लिए कहा और तुमने वैसी तैयारी भी की लेकिन बात यह है कि हमने लापसी मे जहर डालने के लिए नही कहा और आपने लापसी मे जहर डाला है। वह व्यक्ति अवाक् रह गया और कहने लगा कि आप क्या कह रहे है, मै स्वप्न मे भी नही जानता कि लापसी मे जहर डाला है। उसमे कतई जहर नही है और जैसा आप पचो ने कहा वैसा ही सामान डाला है उसके अतिरिक्त कुछ भी नही है। तो इस पर सबकी जुबान खुल गयी और कहा कि अच्छा तुमने जहर नही डलवाया तो ऐसा करो कि आप पहले जीमो ! और तुमको घण्टे दो घण्टे तक कुछ नही होगा तो हम सारे गाव वाले जीम लेगे। वह जीमनवार करने वाला व्यक्ति सोचने लगा कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कौन जाने बाबा नौकर चाकरो ने जहर डाल दिया होगा या किसी दुश्मन ने डाल दिया होगा। यदि पहले पहल मै जीम लूँगा तो मर जाऊँगा। उसने कहा कि मै तो पहले नही जीमूँगा। तो पचो ने देखा यह बात और भी मजबूत हो गयी कि लापसी मे जहर है तभी तो यह नही जीमता। उसने कहा कि देखो साहब मैं सच्ची बात बतला देता हू कि मैने तो जहर नही डलवाया लेकिन कदाचित् कोई दुश्मन आ गया हो या रसोइये के मन मे खराबी आ गयी हो और उन्होने जहर डाल दिया हो तो उनको पूछने मे पता लग जायेगा। फिर उस जीमनवार करने वाले व्यक्ति ने उन रसोइयो से पूछा कि इस लापसी मे जहर है ? तो उन्होंने कहा कि नही। हम सौगन्द खाकर कहते है कि इसमे जहर नही है। तो पचो ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो पहले तुम जीम लो और घण्टे दो घण्टे तुम्हे कुछ नही हुआ और तुम जिन्दे रहोगे तो हम जीम लेगे। इतनी बात सुनकर रसोइये सोचने लगे कि कौन जाने क्या हुआ हो, कही हम इधर उधर रह गये हो और किसी ने दुश्मनी से जहर डाल दिया हो, हम खा लेगे तो मर जायेगे इसलिए पहले

हम तो नही जीमते। पंचो ने कहा कि बात तो बिगडी लेकिन यह मालूम करना चाहिए कि यह बात कहा से उठी। तो फिर इसकी खोज करने के लिए सोचा और एक दूसरे से पूछताछ करने लगे तो सगे सम्बन्धियो से पता लगाते लगाते वहा तक पहुँचे कि सेठजी ने कहा था कि लापसी में जहर है। सेठ ने कहा कि देखिये मै गलत नही कहता और मुझे तो वैद्यराज जी कहा। मैने उनसे पूछा कि मै लापसी खा लूँ तो उन्होने कहा कि लापसी में तो जहर है। वहा पर वैद्यराज जी को बुलाया गया और पचो ने सोचा कि यदि जहर की पुडिया जायेगी तो वैद्यराज जी के यहा से ही जायेगी, उन्हे बुलाकर पूछे कि आपके यहा से कितने जहर की पुडिया गयी। वैद्यराज जी ने कहा कि मेरे यहा से तो एक भी जहर की पुड़ियाँ नही गई। उनसे कहा गया कि फिर आपने कैसे कहा कि लापसी मे जहर है। वैद्यराज ने कहा सेठजी को तो मैने दवा दे रखी थी और उसके लिए पथ्य बता रखा था कि तेल और गुड़ नही खाना। इसलिए यह लापसी सेठजी के लिए जहर है, लेकिन गाव वालो के लिए जहर थोड़े ही है। पचो ने कहा कि जब आपके यहा से पुड़िया नही गयी और आपने पथ्य की दृष्टि से बताया तो फिर आप ही इस लापसी को पहले जीम लो। वैद्यराज जी निर्भय थे और निश्चित थे, वे आगे चले और जाकर अच्छी तरह से लापसी खा ली और बैठ गये, दो तीन घन्टे कुछ नही हुआ तो सारे गाव वाले बिना बुलाये जीम गये।

बन्धुओ, देखिये किसी भी चीज का निर्णय किये बिना किसी बात मे पड़ जाये तो लापसी में जहर के समान हो जाता है और इस प्रकार अनेक बन्धु कर्मबन्ध करके अपने जीवन को न जाने कैसे असस्कारित बना लेते है। जीवन को सस्कारित करने के लिये चातुर्मास का काल अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इन चार महीनो मे वस्तु स्थिति का निर्णय करे। निर्णय अनेको चीजो का होता है। सब चीजो का निर्णय सम्यग् दृष्टि से कर लेते है तो वहाँ वास्तविक विकास का प्रसग ही आ जावेगा।

आप अपने मनों में यह दृढ प्रतिज्ञा करें कि हमें किसी बात का निर्णय करने में पूरी तरह से तत्पर रहना है और निर्णय भी उसी व्यक्ति से मिलकर करेंगे जिससे सीधा सम्बन्ध है। वह निर्णय नग्न सत्य के रूप में होगा और उसी से जीवन संस्कारित हो जाएगा।

घड़ी सवा दस बजा रही है। चौदस की स्थिति अवश्य है। पर चौदस होने पर भी अधिक देर तक सुनाने पर थोडा ब्रेक लगा हुआ है। इस स्थिति से इस विषय को गौण कर रहा हूं। इधर मेरे सामने और भी प्रश्न आ रहे हैं कि स्थायी कथा भाग भी व्याख्यान में रखा जावे, जिससे साधारण जन मानस भी कुछ शिक्षा ग्रहण कर सके और यह ठीक भी है। भगवान महावीर ने जीवन की पुष्टि के लिये चार तरह के अनुयोग फरमाये हैं। पहला है द्रव्यानुयोग जिसमें द्रव्य सम्बन्धी पदार्थों का विशद् विवरण है। दूसरा है, गणितानुयोग जिसमें गणित सम्बन्धी विवरण है, तीसरा है, चरण करणानुयोग, जिसमें आचार सम्बन्धी बातों का वर्णन है, और चौथा है, धर्म कथानुयोग।

तो धर्म कथानुयोग भी शास्त्रों का एक अंग माना गया है। इसका कथन करते हुए प्रभु ने फरमाया कि जो साधक गहन साहित्य को नहीं समझ सकते उनको कथाभाग के प्रसंग से साधना के उन गहन सूत्रों को समझाया जा सकता है। चरित्र चित्रण के रूप में उनको तत्त्व का बोध हो जाता है। रंग की डिबिया में क्या क्या चीजें रखी हुई हैं? बच्चों को यह तात्त्विक दृष्टि से बताने जावें कि हाथी, घोड़ा रथ आदि सभी इस रंग की डिबिया में हैं पर बच्चे समझ नहीं पाते। जब इसी रंग को दीवार पर हाथी, घोडा के रूप में चित्रित करके बता दिया जाता है तो जल्दी समझ जाते हैं।

इसलिये वीतराग देव ने चार अनुयोग बताये हैं। इन सबके साथ [illegible] का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। जीवन के निर्माण करने में [illegible] अन्य अनुयोगों का है कथानुयोग का भी

उतना ही योगदान है। इससे सरलता से समझकर हर भाई बहन अपने जीवन की तुलना उन चरितनायको से कर सकता है। इसी प्रसंग से सोच रहा हूं कि महाभारत के बीच का प्रसग कथा रूप में कहता चलूँ। इसमें कमलसेन नामक एक तरुण का जीवन है। उसमें उस तरुण ने कैसी निष्ठा रखी है उसने अपना-जीवन कैसा बनाया, और जीवन के प्रश्न को किस तरह से हल किया, इसका दिग्दर्शन होगा। इसमें कुछ माताओ का भी प्रसंग आता है जो सती रूप मे प्रख्यापित हुई हैं। समय का अवकाश नही है पर उसकी एक कडी उच्चारण के रूप मे रख ही देता हू क्योकि वह आन्तरिक जीवन को परिमार्जन करने वाली है।

निज गुण सुखकामी, ध्याता है आत्म राम को।

कहा है निज गुण सुखकामी, जो अपने सुख की कामना रखता है अर्थात् अपने जीवन को समझने की भावना रखता है। उसे विकसित रूप मे देखना चाहता है और जीवन की कलुपताओ का उन्मूलन करके जीवन के वास्तविक रूप को निखारना चाहता है। वह आत्माराम मे रमण करता है। आत्माराम के ध्येय के विना जीवन निर्णायक समतामय नही वन सकता है। इसलिये इस मगला-चरण की कडी के साथ भी थोड़ा सम्वध जोडें।

तीन व्यक्ति माता-पिता और पुत्र तीनो अपने विचारो मे मस्त हो रहे हैं और वहन को खतम करने का विचार कर रहे हैं। वह भी कन्या गरीव घराने से निकल कर करोडपति के घर पहुची है। पर उसकी वह तमन्ना नही है कि सत्ता और सम्पत्ति मे डूवी रहे। वह तो यह समझती है कि यह सत्ता और सम्पत्ति और साहिवी मेरे जीवन के लिए महत्वपूर्ण नहीं है मेरे जीवन के लिये महत्वपूर्ण है तो जीवन का स्वरूप है। मैं अपने उस सही स्वरूप को कैसे प्राप्त करूँ और कैसे समझूँ इस चिन्तन को लेकर वह अपने हाल में मस्त है।

इन चार प्राणियो के वीच मे क्या प्रसग वनता है, और



गौरव-गरिमा शालि के पावन जीवन

समवीर में मंगल

शान्ति-क्रान्तिकारी

महामहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

को

चरण कमलों में

शत-शत अभिवन्दन।

केसरीचंद माणकचंद सेठिया

[illegible], बीकानेर



परम श्रद्धेय, प्रात स्मरणीय

आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म. सा.

के

ज्ञान-भक्ति एवं वैराग्य रस से ओत-प्रोत

'पावस-प्रवचन'

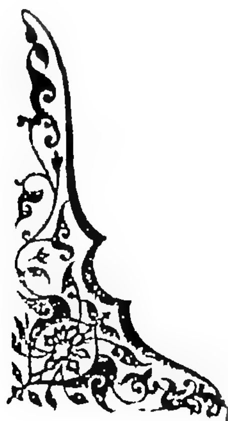
हम सबके जीवन मे नया प्रकाश देने वाले हो।



दीपचन्द उत्तमचन्द

(कपड़े के व्यापारी)

गगाशहर (बीकानेर)



पति क्या निर्णय लेता है और उस बहन पर क्या बीतती है ! यह कल के लिये रख देता हू । इच्छा तो थी कि पूरा कर दूँ, पर समय अधिक आ जाने से इसे आगे के लिये छोड देता हू । फिर प्रसग आवेगा तो सुनाऊँगा ।

आपको अन्त मे इतना ही सम्बोधन करना चाहता हू कि आप इस राजधानी के नागरिक हैं, बुद्धिमान् हैं । जीवन की स्थिति को समझने के लिए वाणी को शुद्ध करिए और कर्तव्यशील बनकर जीवन को सस्कारित करने की राह पर चल पडिए । स्वाध्याय, सामायिक प्रतिक्रमण रात्रि भोजन त्याग व्रत पच्चखाण विधिपूर्वक करिए और इतना करते हुए ध्यान यह रहे कि जीवन के वास्तविक रूप को समझे । इसको तैयारी चातुर्मास मे निरन्तर करते रहे और इस भावना के साथ चलते रहेंगे तो आप अपने कल्याण के मार्ग को प्रशस्त बना सकेगे ।

लाल भवन

२५ जुलाई १९७२



ण याणंति अप्पणो वि किन्नु अण्णेसिं।

—आ० चू० १।३।३

जो अपने को ही नही जानता वह दूसरो को क्या जानेगा।

---

७ | आत्मिक शान्ति

"श्री दृढ़ रथ" नृप तो पिता, "नन्दा" थारी माय।
रोम-रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय॥
जय-जय जिन त्रिभुवन धणी, करुणा निधि करतार।
सेव्या सुरतरु जेहवो, वाछित सुख दातार॥

यह प्रभु शीतलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रतिदिन प्रभु का नाम विभिन्न रूपो मे आ रहा है। आज प्रभु शीतलनाथ का नाम आया। आज ससार को शीतलता की आवश्यकता है। जब तक जीवन मे शीतलता का सचार नही होता है, तव तक मानव का मन सतप्त रहता है। कितना ही वैभव मिल जाय, कितने ही अधिकार प्राप्त हो जाय, कितनी ही डिग्रिया मिल जाय, लेकिन इन सबके मिलने पर भी शाति न मिले, शीतलता न आये तो उस व्यक्ति का जीवन, जीवन नही रहता। वह मनुष्य भले ही कहलाता हो, वह अपनी स्थिति से कुछ मानवीय कार्य भी करता हो लेकिन वास्तविक जीवन का जो आनन्द है, वह उसे नही ले पाता। इसलिए प्रभु शीतलनाथ के चरणो की उपासना का सकेत दिया गया है। हम

शीतलनाथ के स्वरूप को समझने की कोशिश करें। कवि ने प्रभु के स्वरूप का वर्णन करते हुए उपमा दी है कि—

शीतल चन्दन नी परे जपता निश दिन जाप।
विषय कषाय नो उपनो मेटो भव दुःख ताप॥

भगवन्! आप चन्दन के समान शीतल हैं शीतलता प्रदान करें, अधिकांशतः आज के मानव का हृदय विषय और कषाय की आग में जल रहा है। एक भी प्राणी ऐसा दृष्टिगत नहीं होता, जो सांसारिक अवस्था में रहते हुए विषय और कषाय की ज्वाला में न जलता रहा हो। अधिकांश प्राणियों की स्थिति यह है कि वे मनुष्य रूप में रहते हुए भी विषय और कषाय की आग से संतप्त हो रहे हैं। उस गर्मी को शान्त करने के लिए तदनुरूप किसी शीतल पदार्थ की आवश्यकता है।

बाहर से भीतर की ओर

जिस प्रकार शरीर में जब गर्मी जलन लगती है, और कुछ फुंसियाँ भी निकल आती हैं उस समय चन्दन का लेप किया जाता है। नमिराज राजर्षि के वर्णन को आपने सुना होगा। उनके शरीर में दाह ज्वर की व्याधि हो गई। वे उस दाह ज्वर से जलने लगे। हाय! हाय!! करने लगे। परिवार के सदस्यों में अशान्ति का वातावरण बन गया क्योंकि सब सोच रहे थे, ये हमारे स्वामी हैं, जो हम सबका भरण पोषण करने वाले हैं, आज इनके शरीर में दाह ज्वर लग रहा है [illegible] जब उन्हें ज्ञात हुआ कि [illegible] बावना चन्दन का लेप [illegible] है तो फिर उस चन्दन को [illegible], अनेक [illegible] चन्दन [illegible] के लिए तत्पर हैं—किन्तु [illegible] महारानियों [illegible] [illegible] [illegible]

व्यक्ति, एक नौकर, दो नौकर चन्दन घिसेगे तो कितना घिसेगे ? अत हम सबको मिल करके यह कार्य करना है - ऐसा सोच कर महाराणिया भी चन्दन घिसने मे जुट गई। जब वे चन्दन घिसने लगी तो उनके हाथ के ककणो की आवाज होने लगी। वह आवाज महाराजा को अच्छी नही लगी। महाराज कहने लगे। मेरे इस दाह ज्वर के अन्दर यह आवाज नमक का काम कर रही है, पीडा और भी तेज हो रही है, मेरी अशाति वढ रही है, हालाकि मन पर उसका असर नही होता, लेकिन शरीर पर असर हो रहा है। चतुर व्यक्तियो ने राणियो को सूचना दी। उन्होने सब ककण निकाल लिये, सौभाग्य की दृष्टि से केवल एक-एक ही कंकण रखा। फिर वे चन्दन घिसने लगी। चन्दन घिसा गया, कुछ लेप हुआ तो महाराजा को शाति मिली। महाराजा ने पूछा—वह आवाज किसकी थी और अब बन्द कैसे हो गई ? तब उनको यह बात बताई गई, कि रानियो के हाथ मे जो ककण थे, वे आपस मे टकराते थे, इसलिए आवाज हो रही थी। बाद मे एक ही ककण रख लिया गया और बाकी के सब उतार दिये गये इसलिए आवाज बन्द हो गई। महाराजा उस समय विचार करते है, चिंतन करते है, यह बावना चन्दन मेरे शरीर पर लगाया जा रहा है, लेकिन मुझे इस चन्दन के लेप के साथ-साथ सोचना यह है कि यह दाह ज्वर व्याधि आई कहा से ? किसी बाहर के व्यक्ति ने मेरे शरीर के ऊपर कोई दाह ज्वर की शक्ति छोड़ दी ? ऐसा नही हुआ है। अनादिकाल से लगे हुए कर्मो के सयोग से यह व्याधि हुई है। कर्मो के कारण ससार अवस्था मे, परिवार, विषय और कषाय का जब तक सयोग रहता है तब तक ये सभी बीमारियाँ है, और इसी से यह दाह ज्वर हो रहा है। आज रानियो के हाथ के ककड़ निकाल दिये गये तो खट खट बन्द हो गई। जब बहुत थे तब खट खट पैदा कर रहे थे, एक रह गया तब खटखट का सवाल ही नही

रहा। इस निमित्त से राजर्षि आत्मचिन्तन की ओर उन्मुख हुए और सोचने लगे कि आत्मा का स्वरूप परमात्मा के तुल्य है। परमात्मा इन विषय कषाय और परिवार के संयोग से सर्वथा परे है, जैसे वे परे हैं वैसे ही मेरी आत्मा भी प्रभु के तुल्य होने के नाते इन सबसे परे है, तो मैं इस संयोग के साथ क्यों चिपट बैठा हूँ और इस अमूल्य जिन्दगी को इन विषय और कषाय की आग में क्यों जला रहा हूँ। जब उनमें इस प्रकार की आत्म-जागृति हुई तो वे भव्य अन्तःपुर का परित्याग करके विषय और कषाय का सर्वथा नाश करने के लिए चल पड़े और उन्होंने तन मन की शीतलता के अनुभव के साथ आत्मिक शान्ति भी प्राप्त की। बन्धुओ! आज मानव क्यों संतप्त हो रहा है? उसके मन में जो दाह ज्वर से भी भयंकर एक सन्ताप है वह संताप शारीरिक संताप की दृष्टि से नहीं है, लेकिन विषय और कषाय का संताप है। उन विषय और कषाय के संताप को समाप्त करने के लिए हम भगवान के स्वरूप का चिन्तन करें और सोचें कि हमारी आत्मा निश्चलित परमात्मा का स्वरूप है, जितने बाहरी पदार्थ इसके साथ लगे हुए हैं, वे दर्पण की तरह ही खटपट पैदा कर रहे हैं। मनुष्य जितने जितने बाहरी पदार्थ पकड़ने की कोशिश करता है, वह उतने बंधन में बंधता चला जाता है। जितनी अधिक विषयों की लालसा रखता है उतना ही वह अन्तर ताप को बढ़ाता है। कैसे बढ़ाता है—चाहे भव्य भवन हो, सुन्दर शय्या हो, लेकिन विषय और कषाय की आग उसके मन में लग रही है तो उसको निद्रा नहीं आयेगी वह हाय हाय करता हुआ शय्या पर करवट बदलता रहेगा। [illegible] होने के लिए कोमल फूलों की शैय्या बिछी हुई है लेकिन उसे निद्रा नहीं आ रही है, वह करवटें ले रहा है, क्योंकि शारीरिक दुःख नहीं था। लेकिन विषय और कषाय की [illegible] है। वह सोचता है कि मैं परिग्रह करके साथ [illegible] रहा हूँ, लेकिन वह कैसे निश्चल [illegible] नहीं

आ रही है। रावण इस प्रकार के भव्य भवन में रह कर रावण जैसे व्यक्ति भी जब सतप्त हो सके है, तो आप सोचिये कि संसार के मनुष्यो की क्या दशा होगी,आज दुनिया में अशाति है,गर्मी है,ताप है— इसके कारण को सोचा जाय तो विषय कषाय की ज्वाला ही उसका कारण परिलक्षित होगा। यह भयकर ज्वाला है, इस ज्वाला से छुटकारा पाना सहज काम नही है। इससे छुटकारा तभी हो सकता है, जब इन्सान आत्मिक तत्व के विषय में स्थाई रूप से सोचे, और समझे— मेरी आत्मा अखण्ड है, मेरी आत्मा इन विषय कषायो से परे है— इस प्रकार के निर्णय की एक निर्णायक शक्ति जिस व्यक्ति मे आती है वह विषय कपाय की ज्वाला से ऊपर उठ सकता है। यह शक्ति कब आयेगी ? जब जीवन का निर्णय करेगा, जीवन का स्वरूप समझेगा।

समग्र परिभाषा

मैने कल जीवन की परिभाषा की थी, एक परिभाषा पहले भी रखी थी, जहा प्रश्न उठा था—कि जोवनम् ? जीवन क्या है ? इसको समझने का प्रयास करना है। जो जीवन का स्वरूप हैं, जीवन की परिभाषा है, वह परिभापा इस प्रकार है।

सम्यग् निर्णायकं समता मयञ्च यत् तज्जीवनम्

जो सम्यक् निर्णायक है, जो समतामय है— वही जीवन है। सम्यक् निर्णय किस बात का ? इस विपय की कल बात अधूरी रह गई थी, लेकिन निर्णय करना आवश्यक है। जव तक मन मे सम्यग् निर्णय नही होग। तव तक आधि व्याधि, वाहरी ताप नही हटेगा। जिन्होने आत्म-निर्णय किया, ससार का निर्णय किया—वे निर्णय करके गतव्य मार्ग पर आगे वढे। आज के मानव को शीतल नाथ भगवान के चरणो मे वैठ कर जीवन का निर्णय करना है, जीवन को समझना है। जीवन वह है, जो स्व-पर का निर्णायक हो। निर्णायक

होने के नाते निर्णय की शक्ति को पहले समझना है। जहां आत्मा का स्वरूप आता है, आत्मा की शक्ति का विश्लेषण आता है—वहां कुछ मतभेद है। कुछ दार्शनिकों का कथन है कि आत्मा नाम का तत्त्व कहां है, जो कि निर्णय करे? आत्मा हमको दिखती नहीं है। या पांच इन्द्रियों से नहीं दिखती है उसको कैसे मानें? इन्द्रियों से परे दुनिया की बहुत चीजें हैं, लेकिन हम मानने को तैयार नहीं हैं। आज विज्ञान बढ़ा चढ़ा हुआ है। वैज्ञानिक दृष्टि से लोग परीक्षण कर रहे हैं। लोग सोचते हैं, बस, विज्ञान की तुला पर जो चीज ठीक उतर जाय वही सही तत्त्व है। विज्ञान की तुला पर सही नहीं उतरे तो वह सही नहीं है। इस प्रकार जब विज्ञान प्रत्यक्ष वस्तु का प्रमाण देता है, प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मान कर चलता है तो हम अप्रत्यक्ष को कैसे मानें? इस प्रकार की विचारधारा चलती है। जब उनसे कहा जाता है कि भाई! तुम सोचो, जब आत्मा नाम का तत्त्व नहीं है, तो जीवन क्या है? बिना जीवन के शुभ-अशुभ का निर्णय कैसे हो? जैसा कि आप सोच रहे हो प्रत्यक्ष जो दिखता है वह सच नहीं है तो यह भी एक प्रकार का निर्णय ही है। तो बताइये यह निर्णय लेने वाला कौन है? उनका उत्तर आता है, वह निर्णय लेने वाला यह शरीर है। शरीर के अतिरिक्त कोई तत्त्व नहीं है। 'शरीरमेव चिल्लक्षणम्।' शरीर ही चिल्लक्षण है। वे ऐसा तर्क देते हैं। वह तर्क इस रूप में देते हैं — शरीर को चिल्लक्षण मानते हैं क्योंकि यह पांच भूतों से बना है। पांच भूतों से शरीर बनने के बाद इसमें विलक्षण शक्ति तैयार हो गई। हम उस शक्ति से निर्णय लेते हैं, [illegible] प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। वे इस तर्क के साथ अपनी बात का [illegible] करते हुए [illegible] देते हैं कि जैसे पान-कत्था चूना आदि में अलग-अलग लालिमा नहीं है किन्तु उनके संयोग से लालिमा [illegible] वैसे ही इन पांच भूतों के संयोग से चैतन्य [illegible] हो जाता है।

क्या शरीर निर्णायक है ?

अपनी निर्णायक शक्ति का पता लगाना बड़ा ही कठिन काम है। अपना ज्ञान होने पर ही अपने निर्णायक का विश्वास जागता है। अपना ज्ञान और अपना निर्णायक, शाब्दिक दृष्टि से पृथक-२ दो शब्द अवश्य है। किन्तु जहा लक्ष्य का समाधान होता है दोनो एक ही भाव के प्रतीक हो जाते है! इस विषय मे अनेक लोगो के अनेक विचार है अनेक धारणाएँ है। कुछ यह कहते है कि–आपके सामने घड़ी है। वह टाइम बताती है। लेकिन जब इसके पुर्जे अलग-अलग थे तब तक वह घडी बोलती नही थी, आवाज नही देती थी जैसे ही पुर्जे एकत्रित हो गये वैसे ही इसमे खटखट की आवाज आने लगी, वह बोलने लगी, अब घडी इतना टाइम बता रही है। जैसे घडी मे टाइम देने की स्थिति आ गई वैसे ही शरीर मे पाच तत्वो के मिलने से आवाज आ गई। यह घड़ी इस कथन की पुष्टि करती है। इस प्रकार के चिन्तन वाले कुछ भारतीय भी है और कुछ पाश्चात्य विद्वान भी है। जो जडवादी है। उनमे थैलिस और एनाक्सीमान्डर, तथा ऐनाक्सीमेनेश आदि मुख्य है। वे अपनी मान्यता की दृष्टि से यह चिन्तन करते है। इस विषय मे आपको भी चिन्तन करना है क्या इन जड़वादियो का जो कथन है वह वस्तुत: सत्य है? आपके सामने भी ऐसे कुछ विचारक व्यक्ति आ सकते है और कुछ ऐसे सम्भावित प्रश्न खड़े कर सकते है। यदि आप अपने जीवन के निर्णायक स्वरूप को समझे हुए नही होगे तो आप उसका उत्तर नही दे पायेगे और आप लडखडा जायेगे। इस तरह आप शान्ति के मार्ग से भटककर मानसिक अशाति मे उलझ जायेगे। निर्णायक शक्ति शरीर ही नही है यह जो कथन है कि "शरीर मेव निर्णायकम्" इस पर कोई विचारवान् व्यक्ति पूछ सकता है यदि शरीर ही निर्णायक है तो मुर्दा शरीर भी निर्णय करेगा। यदि वह ऐसा नही करता है तो उसकी निर्णय करने की शक्ति कहा चली

गई ? पाँच भौतिक तत्त्व तो उसमें विद्यमान हैं ही। इससे यह स्पष्ट होता है कि पाँच भौतिक तत्त्वों के अतिरिक्त स्वतन्त्र निर्णायक शक्ति है। यदि कोई कहे कि वह दिखती क्यों नहीं है तो उसका यह सोचना उस आदि युग की [illegible] है। आज तो वैज्ञानिक युग भी बदल रहा है जो वैज्ञानिक युग का प्रमाण देते हैं वे सिर्फ आँखों से दिखे दृश्यों को सत्य मानते हैं, ऐसा नहीं है। उनकी दृष्टि लम्बी चौड़ी हो गई है। वे प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुभवों को भी मानते हैं। अतः शरीर ही निर्णायक है और वही चेतन है यह युक्तिसंगत नहीं है। पूर्व में जो महुआ आदि का उदाहरण दिया गया था वह यहाँ पूर्णरूप से घटित नहीं होता है। क्योंकि महुआ आदि जिन पदार्थों से मदिरा बनता है उनमें किसी न किसी रूप में मादकता पहिले ही विद्यमान होती है वही सम्मिलित रूप में 'मदिरा' कहलाती है। जैसे प्रत्येक तिल में पृथक्-पृथक् थोड़ा-थोड़ा तेल रहता है। इन तिलों को इकट्ठा करके पेर दिया जाय तो उसमें से अधिक तेल निकल आता। यद्यपि पहले उसमें तेल नहीं दिखता था किन्तु सम्मिलित रूप से पेर दिया तब तेल प्रकट हो गया। यह तेल कोई [illegible] पैदा हो गया ऐसा नहीं [illegible] तो तिल में, पहिले था ही [illegible] [illegible] किया जाय [illegible] कुछ भी [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कोई कार्यवाही नही बनती है—घडी साज के विना उसमे आवाज नही होती । घड़ी साज समझता है कि यह घड़ी है । घडो के पुर्जे और काटे को वह यथास्थान रखता है । यह निर्णायक शक्ति उस घडी से भिन्न उस घड़ीसाज मे है इसलिये निर्णायक अलग है । इसी प्रकार घडी के समान यह शरीर बना है लेकिन इसका बनाने वाला घडी साज की तरह वह निर्णायक आत्मा है । वह इस शरीर से भिन्न है । और वर्तमान मे वह दूध पानी की तरह शरीर से ओत-प्रोत होकर चल रहा है । अत शरीर मेव निर्णायकम् यह सिद्धान्त नितान्त हास्यास्पद है । साथ ही दूसरा जो यह कहा गया था कि "प्रत्यक्ष ही प्रमाण है" उनसे मै पूछना चाहूंगा कि आपके १० पीढी के दादाजी थे कि नही ? प्रत्यक्ष तो है नही, तथा आपने उन्हे आखो से भी नही देखा है फिर आप कैसे मानते है कि हमारे दादाजी थे, किन्तु आपको वाध्य होकर अनुमान से ऐसा मानना ही पडता है । उस समय आप प्रत्यक्ष पर ही स्थिर नही रह सकेगे । आप यह कहेगे कि वर्तमान मे जो हम अपना शरीर देख रहे है इस शरीर का सम्बन्ध हमारे पिता के साथ है, और वे हमारे सामने मौजूद है इससे स्पष्ट है कि पिताजी के पिताजी भी थे और उससे आगे उनके भी पिताजी थे । इस प्रकार दादाजी तक सम्वन्ध का तारतम्य जुड़ जाता है । यह अनुमान का विषय है । जव आप वैज्ञानिक स्थिति से चिन्तन करते है तो वैज्ञानिक भी जहा अदृष्ट की खोज करते है तो वे भी अनुमान का सहारा लेते हैं । वैज्ञानिको का यह विश्वास है कि इस विश्व मे कोई ऐसी शक्ति अवश्य है जो सृष्टि के लिये रहस्य बनी हुई है, जिसे खोजना है, इसके लिए उनकी दौड धूप चल रही है और अनेक वैज्ञानिक इस रहस्य को जानने के लिये अपनी जिन्दगी तक समाप्त कर चुके हैं । तव कही जाकर कोई नया आविष्कार होता है, अत विज्ञान भी अनुमान के आधार पर ही नई-नई खोजे करता है । इसलिये प्रत्यक्ष जो इन्द्रियो का विषय है वह इन्द्रियो तक ही सीमित है । इन्द्रियो के

समस्त जो पदार्थ हैं उनको भी हम पूरा नहीं देख पाते हैं । अभी आप यहाँ बैठे हुये हैं, इस शान्ति भवन में आप क्या-क्या देख रहे हैं ? आपसे अलग अलग प्रश्न किया जाय कि आपको क्या क्या दृष्टिगत हो रहा है ? आपको [illegible] क्या [illegible] रहा है ? तो उत्तर आयेगा दीवार को देख रहे हैं, [illegible] देख रहे हैं, दीवार पर टंगी घड़ी देख रहा है, और ये भाई बहिन यहाँ बैठे हुये हैं, इन्हें भी देख रहे हैं, लेकिन [illegible] है, क्या इसमें कुछ देख पा रहे हैं । क्या इस दीवार में कोई दाग नहीं है । आप ऐसा न सोचें, क्योंकि इसमें भी एक दाग है । इसमें अनन्तानन्त पुद्गल भरे हुये हैं और वे भी अनन्त हैं । [illegible] दृष्टि से और वीतराग की दृष्टि से इसका [illegible] या अनुमान कर सकते हैं । [illegible] से [illegible] दिखाई देता जाता । कमरे में सूर्य की किरणें आ रही हैं, [illegible]

[illegible]

पानी में भी जीव हैं ?

[illegible]

दीखते है, उनका कहना है कि पानी जड है, उसमें जीव कहां हैं। नास्तिक व्यक्ति के साथ कुछ विवेकी व्यक्ति होते है, जो आस्तिक कहलाते है वे भी कह देते है, हाँ साहब ? यह तो गप्प ही है, हम इसे नही मानते है। वह कहते है, शास्त्र में यदि कोई बात गलत आ गई है तो उसको कैसे माने ? हम प्रत्यक्ष देख रहे है, पानी की बूंद हाथ में लेते है तो उसमें कुछ भी नही दिखता है। जो मानते है वह रूढिवादी है। किन्तु उस समय श्रद्धालु व्यक्ति, जो शरीर को निर्णायक नही मानने वाला है, शरोर से भिन्न आत्म तत्व को स्वीकार करने वाला, यही कहेगा नही, वीतराग देव ने जो कहा है, वह भले ही हमारी समझ में न आये भले ही आख से दष्टिगत नही होता हो, किन्तु वह सत्य है, तथ्ययुक्त है। ये दोनो कल्पनाए पूर्व में चला करती थी किन्तु आज वैज्ञानिको ने ऐसे यत्र तैयार कर लिए है, जिनसे एक बूंद पानी मेचलते फिरते अनेक जीव दिखाई देते है। जो व्यक्ति कच्चा पानी पीते है, बिना छना पानी पीते है, न मालूम कितने जीवो को हजम कर जाते होगे,इसीलिए कहा जाता है कि बिना छना पानी नही पीना चाहिए। जो अज्ञानी है, जो नही समझते है, जो जीवन को सस्कारित करना नही चाहते है, जिनका जीवन निर्णय करने में असमर्थ है- ऐसे व्यक्ति भले ही बिना छना पानी पीते हो लेकिन जिनके मन मे यह है कि हम निर्णायक है, हम समझते है, वे तो सभवत बिना छाना पानी नही पीते होगे। तो मै बता रहा था कि कुछ दृष्टि से परे भी तत्त्व है, जिनमे से कुछ को वैज्ञानिक साधनो से देखा जा सकता है, चीटियाँ जब चलती है तो उनको पहले सुगन्ध आती है, वे उसके सहारे चल कर किसी चीज को खाने की कोशिश करती है। चीटी यह सोचती है, जितना खाना खा रही हू, जितनी सुगन्ध आ रही है, इतनी ही दुनियाँ है, इसके अतिरिक्त कुछ नही है। यह चीटियो का अज्ञान जो इस तरह सीमित है, वह समग्र दृष्टि से नही सोच पाती है। दयालु उन्हे परे हटा देता है,

लेकिन उनके पास सोचने का मस्तिष्क नहीं है जिससे कि जान सकें, भेद का हटाने वाला और है वह मुझ से भिन्न है। जो चींटियों की दशा है, वैसी ही करीब-करीब कुछ विकारों के साथ मक्खी-मच्छर, और पशु की है। पशु भी मानता है, सिर्फ पशु जगत है, उससे आगे कुछ नहीं। इसी प्रकार मनुष्य भी यही समझते कि मेरे सामने जितनी सृष्टि है यही सब कुछ है उसके आगे सृष्टि नहीं है। अतः उन चींटियों के समान माना जा सकता है, उनके पास दृष्टि अवश्य है, बुद्धि भी है लेकिन जितना ज्ञान पाते हैं। उन्होंने ज्ञान का पता लगा लिया है। जिससे जीवन का लम्बा चौड़ा स्वरूप ज्ञात नहीं। उन्हें मैं क्या हूँ? जीवन क्या है? निर्माण की शक्ति क्या है? यह पता नहीं है। ये इन्सान जड़-पुद्गल शक्ति का ही ज्ञान रखते हैं। किन्तु आज के वैज्ञानिक ऐसा नहीं करते हैं, ये मानते हैं, जितनी मात्र

की कोशिश कर ले तो जीवन के शिखर तक पहुच सकते है,जीवन के प्रश्न को हल कर सकते है। जोवन क्या है ? इस स्थिति को जिसने समझा है वह व्यक्ति ठीक तरह से चल पड़ा है। जिसने नही समझा है वह भौतिकवाद पर चला, जीवन के झझावात मे फँसा और विषय और कषाय को आग ने उसे जलाने की कोशिश की। कल मैं एक रूपक रख रहा था। उसमें प्रसग चल रहा था कि इधर सासू, ससुर और पतिदेव इन तीनो की निर्णय शक्ति गायब है, सबकी निर्णायक शक्ति योग्यता की दृष्टि से विद्यमान है, लेकिन मन असस्कारित है। हीन दृष्टि से उन्होने सोच लिया, एक व्यक्ति ने अर्थात् सासु ने जो कह दिया, वही ठीक है। वही गोविन्द करे। माता पिता जोर देकर कह रहे थे, गोविन्द, तुम्हे हमारी बात माननी पडेगी। तुम इस प्रकार हमारे से अलग नही रह सकते। तुम सोचते हो, यह कन्या तुम्हे बहुत प्रेम करती है, तुम्हारे प्रति स्नेह दिखाती है लेकिन यह इसका कपटयुक्त चलन है। इसके जीवन पर तुम्हे विश्वास नही करना चाहिए। तुम बिना स्त्री के रह जाओ तो भी कोई बात नही। तुम्हे और कन्या मिल जायेगी, तुम फिक्र मत करो। हमारी बात को समझ कर निर्णय शीघ्र करो। आखिर वह तरुण विनयशीलता के साथ दबा हुआ माता पिता के समक्ष बोल नही सकता, उसने दबे स्वर से कहा, पिता श्री, आप और मातु श्री जो बोल रहे है। मैं इसको तथ्य-युक्त समझ लूँ लेकिन तथ्ययुक्त समझने के पश्चात् मुझे क्या करना है। आगे तो समझा दीजिये। तो माता बोल उठी, पुत्र क्या करना है ? इसको समाप्त करना है। माता मनुष्य की हत्या, और वह भी पत्नी की हत्या, उसको समाप्त करने का यह सकल्प अटपटा सा लग रहा है। अगर वह अशिष्ट है, और आपकी दृष्टि मे ठीक नही है तो उसको क्यो नही उसके पिता के यहा भेज दिया जाय। पुत्र का उत्तर सुनकर माता कहने लगी, पुत्र तू नही समझता है। यह बद-चलन स्त्री है, यह अभी अपने परिवार वालो को मालूम नही हुआ है,

सम्बन्धियों को भी ज्ञात नहीं हुआ है, लेकिन अब इसको वहाँ भेज देंगे और कुछ दिन तक नहीं लायेंगे तो बाद में लोगों में चर्चा का विषय बनेगा । इससे हमारा मुँह काला हो जायगा इसलिए पिता के यहाँ छोड़ना ठीक नहीं है । इसका तत्काल इलाज करना है । आज सूर्य अस्त हो इसके पहले पहले । गोविन्द ने कहा, माता जी ! मैं नहीं समझ पा रहा हूँ । कैसे इलाज हो । इतने में पिता चिन्तन करके कहता है, कुछ मेरे मस्तिष्क में एक उपाय आ गया है । जंगल के बीच में एक नयी बगीची है, उस बगीची अन्दर पेड़ों के बीच में एक भयंकर कुआ है । इसको तुम बगीची की हवाखोरी करने की दृष्टि से साथ ले जाओ और कुए के नजदीक ले जाकर कुए में धक्का दे देना । जब कुए में गिर जाय तब कुछ देर तक मत बोलना । थोड़ी देर के बाद हल्ला करना । कुछ रोना, हाय यह क्या हो गया,

की कोशिश कर ले तो जीवन के शिखर तक पहुच सकते है,जीवन के प्रश्न को हल कर सकते है। जोवन क्या है ? इस स्थिति को जिसने समझा है वह व्यक्ति ठीक तरह से चल पड़ा है। जिसने नही समझा है वह भौतिकवाद पर चला, जीवन के झझावात में फँसा और विषय और कषाय को आग ने उसे जलाने की कोशिश की। कल मैं एक रूपक रख रहा था। उसमें प्रसग चल रहा था कि इधर सासू, ससुर और पतिदेव इन तीनो की निर्णय शक्ति गायब है, सबकी निर्णायक शक्ति योग्यता की दृष्टि से विद्यमान है, लेकिन मन असस्कारित है। हीन दृष्टि से उन्होने सोच लिया, एक व्यक्ति ने अर्थात् सासु ने जो कह दिया, वही ठीक है। वही गोविन्द करे। माता पिता जोर देकर कह रहे थे, गोविन्द, तुम्हे हमारी बात माननी पड़ेगी। तुम इस प्रकार हमारे से अलग नही रह सकते। तुम सोचते हो, यह कन्या तुम्हे बहुत प्रेम करती है, तुम्हारे प्रति स्नेह दिखाती है लेकिन यह इसका कपटयुक्त चलन है। इसके जीवन पर तुम्हे विश्वास नही करना चाहिए। तुम बिना स्त्री के रह जाओ तो भी कोई बात नही। तुम्हे और कन्या मिल जायेगी, तुम फिक्र मत करो। हमारी बात को समझ कर निर्णय शीघ्र करो। आखिर वह तरुण विनयशीलता के साथ दबा हुआ माता पिता के समक्ष बोल नही सकता, उसने दबे स्वर से कहा, पिता श्री, आप और मातु श्री जो बोल रहे है। मैं इसको तथ्य-युक्त समझ लू लेकिन तथ्ययुक्त समझने के पश्चात् मुझे क्या करना है। आगे तो समझा दीजिये। तो माता बोल उठी, पुत्र क्या करना है ? इसको समाप्त करना है। माता मनुष्य की हत्या, और वह भी पत्नी की हत्या, उसको समाप्त करने का यह सकल्प अटपटा सा लग रहा है। अगर वह अशिष्ट है, और आपकी दृष्टि मे ठीक नही है तो उसको क्यो नही उसके पिता के यहा भेज दिया जाय। पुत्र का उत्तर सुनकर माता कहने लगी, पुत्र तू नही समझता है। यह बद-चलन स्त्री है, यह अभी अपने परिवार वालो को मालूम नही हुआ है,

सम्बन्धियो को भी ज्ञात नही हुआ है, लेकिन जब इसको वहा भेज देंगे और कुछ दिन तक नही लायेंगे तो बाद मे लोगो में चर्चा का विषय बनेगा। इससे हमारा मुँह काला हो जायगा इसलिए पिता के यहा छोडना ठीक नही है। इसका तत्काल इलाज करना है। आज सूर्य अस्त हो उसके पहले पहले। गोविन्द ने कहा, माता श्री! मैं नही समझ पा रहा हू। कैसे इलाज हो। इतने मे पिता चिन्तन करके कहता है, पुत्र मेरे मस्तिष्क मे एक उपाय आ गया है। जगल के बीच मे एक अपनी वगीची है, उस वगीची अन्दर पेडो के बीच मे एक भयकर कुआ है। इसको तुम वगीची की हवाखोरी करने की दृष्टि से वहा ले जाओ और कुए के नजदीक ले जाकर कुए में धक्का दे देना। जब कुए मे गिर जाय तब कुछ देर तक तो मत बोलना। थोडी देर के बाद हल्ला करना। कुछ रोना, हाय यह क्या हो गया, मेरी पत्नी कुए मे गिर गई। जितने प्राणी वहा होगे उन तक तुम्हारी पुकार पहुच जायगी। वगीची के जो रक्षक हैं वे हमारे पास पहुचेंगे। हमारे पास समाचार आयेगा तो हम भी पहुच जायेगे। और सब कार्य ठीक हो जायगा। यह उपाय ठीक लगा। आप देखिये, यह निर्णय हो रहा है। यह कैसा निर्णय हो रहा है? यह सस्कारित जीवन का निर्णय है? यह जीवन का निर्णय है या अधकार का निर्णय है? आप सोचेंगे, ऐसा कृत्य नही हुआ होगा। आज के जमाने मे ऐसे कृत्य नही होते हैं? मैं क्या बताऊँ, मेरे कानो मे ऐसे कुछ कुछ शब्द आ जाते हैं। वैसे कृत्य नही होते है, लेकिन चाँदी के टुकडो के लिये इससे भी भयकर कृत्य होते हैं। सुनने को मिला, एक कन्या का विवाह हुआ। उसके बाद ससुराल वालो के मन मे आया, इस कन्या के साथ पैसा कम आया है। इसको खत्म करो। दूसरी कन्या के साथ विवाह करेंगे तो और पैसा आयेगा। इस कारण उस कन्या को जला दिया है या दूसरे तरीके से खत्म कर दिया जाता है। ये ऐसे अन्याय और अत्याचार कभी कभी कर्णगोचर होते है। आप

कहेगे, महाराज, कहानी वहुत होती है । कहानी का जिक्र मैं कर रहा हू, वह मै इसलिए कर रहा हू, जीवन अधकार मे पडा हुआ है, आप कहेगे अधकार क्या है ? अधकार ऐसी वृत्तिया हैं, इस प्रकार की मानसिक भावना है जिनके कारण मानव जीवन को नही समझ पा रहा है, ठीक तरह से निर्णय नही कर पा रहा है। ऐसी अवस्था मे मै धम समझाऊँगा तो किसको समझाऊँ। जो अज्ञानी है जिनका अज्ञान का पर्दा नही हटा है वे जीवन को क्या समझेंगे।

और जो कुछ होगा धर्म पर आयेगा और धर्म पर आयेगा तो वास्तविक दृष्टि के रूप मे होगा। फिर भी मै धर्म की परिभाषा को सरल करने की कोशिश कर रहा हू। वह निर्णायक शक्ति आपके मस्तिष्क मे तभी आयेगी जव आप अज्ञान से रहित होगे। जब आप समझ जायेगे कि अब ब्लेक मनो कमाने की आवश्यकता नही है, काला बाजारी करने की आवश्यकता नही है, आदि पर शान्ति के क्षणो में जब इस प्रकार की भावना बनेगी तब कार्य बन सकेगा। इस भावना से ही सन्त भी कहते है पर उसका असर सुनने तक ही रहता है उसके बाद वही दौड धूप उसी ढग से चल पडती है। और उसी वातावरण में रहते है। आप यह कहे कि ऐसी बाते नही कहू तो फिर कौनसी बाते कहू। ऊची ऊची बाते कहू तो आप सुनेंगे नही। क्योकि वे बाते आपके दिमाग में बैठती नही है कारण स्पष्ट है कि दिमाग मे अन्यान्य बाते भरी रहती है। आप यह जानते हैं जिस मकान में बैठना है उसमे पहले झाडू देते हैं। उस मकान को साफ करते है। फिर उसमे बैठते है उसी तरह आप अपने दिमाग को भी झाडू देकर बैठे। आपको इस बात पर कुछ चिन्तन करना है। आज का मानव अपने आप मे दरिद्री बना हुआ है। कैसे निम्नस्तर की भावनाये उसके दिमाग में घर कर रही है, जो किसी तरह कन्याओ को जलाकर स्त्रियो को मारकर पैसा कमाने के लिए नये-नये विवाह करे—क्या आप उनको मनुष्य कहेगे। न जाने आप तो

सर्टिफिकेट देगे या नही, लेकिन ज्ञानी जन तो देगे। ज्ञानी जन कहेगे यह जीवन का निर्णायक स्वरूप समझने वाला नही है।

सत्य सिहर उठा :

मैं अब आपके सामने उन तीन प्राणियो माता, पिता और पुत्र की बात रख रहा हू। पिता ने निर्णय लिया और पुत्र को कहा कि पुत्र वधू को दूर जगल मे ले जाना है और वहा जाकर इसकी हत्या करनी है। उन्होने चरित्र की शका के कारण यह कार्य किया, पैसो के लिये नही किया। पुत्र ने दबे मन से पिता की बात स्वीकार की और अपनी पत्नी के कमरे मे गया। ऊपर से कृत्रिम मुस्कराहट को लेता हुआ अपनी पत्नी से कहता है कि प्रिये, बगीचे मे घूमने को गये बहुत दिन हो गए चलो आज बगीचे मे घूम आये। वह पवित्र हृदय वाली जिसके मन मे कपट नही है, छल नही है और अपने पति देव को ही सर्वस्व समझने वाली है। कहती है प्राण नाथ, जैसी आपकी आज्ञा। मैं सदैव आपकी आज्ञा के लिये हाजिर हू। पति देव ने कहा—चलो तैयार हो जावो। वह वस्त्र पहिन कर चट से साथ हो गई। घर से बाहर निकलकर तागा लिया और दोनो उसमे बैठ गये। पतिदेव कुछ कृत्रिम बातें करते हुए जा रहे थे और मन मे उथल-पुथल मची हुई थी लेकिन उनकी प्रिया के मन मे न तो किसी प्रकार की उथल-पुथल थी और न किसी प्रकार की घबराहट थी। वह गभीरता से बैठी हुई थी। चिन्तन कर रही थी, मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पतिदेव मिले हैं। बगीचे मे जाकर दोनो घूमने लगे लेकिन गोविन्द के मन मे तो उथल-पुथल मची हुई थी। वह अलग ढग से चल रहा था। कभी कुछ चिन्तन करता है तो कभी कुछ सोचता है। यह अबोध बाला आज मेरे साथ किस प्रकार का वर्ताव कर रही है और मैं आज कैसा निष्ठुर बन रहा हू। मैं पत्थर का बन कर माता-पिता की आज्ञा को स्वीकार करके

इसके जीवन को समाप्त करने को तैयार हो रहा हूं। वह अपने आप मे सोचता है हाय गोविन्द क्या तू मानव है? या दानव है—वह अपने आपको कोस रहा है, लेकिन उसके दिमाग का पर्दा नही हट रहा है। ऊपर से मुस्कराहट की बात करता रहता है। वह अपनी प्रिया से कहता है कि प्रिये, वहाँ पानी से भरा हुआ एक कुआ है, वहा चले। वह अपने पैर लड़खड़ाता हुआ पत्नी को लेकर उस कुए की पाल पर पहुचता है। पाल पर पहुच कर वह अपनी पत्नी की ओर देखता है और मन मे विचार करता है हाय आज तू हत्यारा बनकर अपनी पत्नी को कुए मे धक्का देकर उसका प्राणघात करेगा। पत्नी कहती है यह कितना भयावह दृश्य है, कितना वियावान जगल है किन्तु आप मेरे साथ है इसलिये मुझे किसी बात का भय नही है, वाकी एकाकी आ जायँ तो हार्ट फेल हो जाय लेकिन मुझे निश्चिन्तता है क्योकि मैं पतिदेव के चरणो में हू। भयानक से भयानक जगल भी हो तो मेरा कल्याण है। इन वातो को सुनकर उसका दिल दहल गया और सोचता है कि जिस पत्नी के साथ मैं इतने दिन तक रहा, कभी दुर्लक्षण नही देखा। कदाचित कुछ होता तो कुछ सकेत मिलते। कुछ समझ मे नही आ रहा है। यह तो मेरे प्रति इतना विश्वास लेकर चल रही है, मुझे परमेश्वर के तुल्य समझ कर चल रही है, फिर यह सारा प्रसग कैसे वन रहा है, इस प्रकार के कुछ शब्द सहसा उसके मुँह से निकल पडे तो वह कहने लगी प्राण नाथ, यह विश्वास आज का नही है वहुत पहले का है जबकि मैं अपने घर पर पिता के पास रहती थी उस वक्त मुझे माता का सस्कार तो पूरा नही मिल पाया लेकिन पिता श्री मुझे सत्सग मे ले जाते थे और कभी कभी सन्तो से प्रश्न किया करते थे। प्रश्नो के साथ-साथ कभी यह प्रश्न भी रख देते थे कि महात्मन्? यह वताये पुरुष तो अनेक तरह की धर्म क्रियायें करके अपने जीवन

का उद्धार कर सकते है लेकिन यह अबला ! जाति अपने जीवन का उद्धार किस प्रकार कर सकती है ?

अबला, नहीं सबला है ।

साधारण भाषा मे नारी को 'अबला' भी कहा जाता है। जहा तक विशुद्ध आत्मिक दृष्टि का प्रश्न है, यह शब्द उपयुक्त नही लगता । हा, जब आत्मा अपनी शक्ति को भूल बैठती है, ऐसी स्थिति मे उसे 'निर्बल' सज्ञा मिल जाती है। किन्तु यह सज्ञा उसकी वास्तविक सज्ञा नही है । यही तथ्य अबला के विषय मे जान लेना उपयुक्त रहेगा । सत पुरुषो का कथन है कि—नारी जाति मे भी वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह जीवन के सही रूप को पाकर अपना उद्धार कर सकती है । साध्वी बनकर, तपचर्या करके अपने जीवन का उद्धार कर सकती है। पिता श्री यह कहते नारी जाति किस प्रकार अपने जीवन को रखे ? तब महात्मा जी ने कहा—नैतिकता की दृष्टि से हर बात को सोचे—विचारे और गृहस्थ धर्म मे रहते हुये भी पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिये और एक पतिदेव को ही अपने जीवन का सर्वस्व समझना चाहिये। जो स्त्री अपने धर्म का पालन करती हुई अपने जीवन को पतिनिष्ठ होकर रखती है वह आध्यात्मिक शक्ति को प्रवाहित करती है। वह धर्म पत्नी के रूप मे रहे, पाप पत्नी के रूप में नही हो और उस पत्नी का यह कर्तव्य होता है कि मेरे पतिदेव गैर रास्ते पर न चले जायँ मेरे पति कोई बुरा काम न करें। ऐसा आध्यात्मिक जीवन का उत्तरदायित्व वह धर्मपत्नी लेकर चलती है। इसलिये शास्त्रो मे उसे धर्मपत्नी कहा गया है-धर्म सहायक कहा गया है। परिवार के सारे सस्कार एक अच्छी पत्नी पर आश्रित होते हैं इसलिये ग्रहस्थाश्रम मे रहते हुए भी अपने जीवन की शक्ति को सम्पादित करना चाहिये, तभी वह जीवन के वास्तविक

स्वरूप को समझ सकती है। ये सब बाते मैंने सत्सग मे सुनी, जो आज कुछ मेरे जीवन मे आ गई है। बचपन के अन्दर बच्चो मे जो संस्कार बन जाते है वे दीर्घकाल तक रहते है। आज तक मेरे मन में भी वे सस्कार पडे हुए हैं। इसलिए बार-बार कहा जाता है कि बाल बच्चो को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षण देना चाहिए, जितना आध्यात्मिक जीवन का शिक्षण दिया जाए उतना ही उनका जीवन आगे जाकर सुन्दर बन सकता है। वह शिक्षण आज कितनी मात्रा मे हो रहा है? मा-बाप कितना अपने बच्चो को सम्भाल रहे है? आज कितना धार्मिक शिक्षण दिया जा रहा है। यह तो एक-एक व्यक्ति से हिसाब लिया जाय तो पता लगे। इन्सान की निर्णायक शक्ति जिस रूप मे और जिस रफ्तार से चल रही है वह बेढगी है। मैं इस विषय पर ज्यादा नही कह रहा हू सिर्फ यह कहना चाहता हू कि धार्मिक सस्कारो से उस बहिन का जीवन कितना ऊपर आया। अब गोविन्द अपनी प्रिया से पूछता है जब तुम बचपन से ही ऐसे सस्कार को लेकर चल रही हो, और पतिव्रत निष्ठा को लेकर चल रही हो तो मेरे सामने तुम, सच-सच बाते करोगी या कुछ छिपाकर रखोगी। पतिदेव आप क्या सोच रहे है मैंने जिन्दगी में कभी आपसे कोई रहस्य नही छिपाया। जब मैंने आपको अपना सर्वस्व ही अर्पण कर दिया तो फिर छिपाकर रखने की ऐसी कौनसी बात आ गई। आप जो कुछ पूछना चाहते है, पूछिए। मैं खुले दिल से उत्तर देने को तैयार हू। गोविन्द सोचता है कम से कम इसको खत्म करने से पहले मे निर्णय कर लूँ कि वस्तुत बात क्या है? उसने प्रश्न किया प्रिये, आज प्रात काल अपनी हवेली मे साधु आया था। पत्नी ने जवाब दिया हा प्राणनाथ आया था। तो तुमने क्या किया। पत्नी कहती है मैंने उसको भिक्षा बहराई। गोविन्द पुनः पूछता है और क्या-क्या, किया? क्या-क्या बोले? तो पत्नी ने कहा बोला क्या।

उसको मैंने सकेत किया वह भिक्षा लेने के बाद हवेली को देखने लगा तो मैंने सकेत मे कहा तुम्हारा एक गया तो उसने इशारे मे कहा तुम्हारे दो गए तो फिर मैंने उत्तर दिया तुम्हारे तीन गए— यह बात हुई थी। गोविन्द ने कहा प्रिये, यह तो तुमने सच सच कहा लेकिन यह क्या एक गया, दो गया, तीन गया इसको समझा दे— उसके दिल की खुलने लगी और उसने सोचा वस्तुत' निर्णय करना चाहिए। मनुष्य के जीवन में निर्णायक शक्ति नही आई तो वह मनुष्य बेकार है। इस भावना से गोविन्द कुए के पाल से हटकर एक पत्थर की चौकी पर आकर बैठ गया और तीनो बातो के रहस्य को समझने के लिए कहा। अब बहिन तीनो बातो को बताना चाह रही हैं और गोविन्द भी सुनना चाहता है लेकिन आपकी घडी टाइम व्रता रही है। उस दृष्टि से, शहर का मामला है, जौहरी लोगो का क्षेत्र है, अत टाइम से काम किया जाय तो ठीक है। यह आज का प्रश्न नही है। टाइम आएगा तो फिर आपको बतायेंगे। इस जीवन के प्रश्न पर आपको भी विचार करना है और मुझे भी विचार करना है। जो जीवन को परिभाषा की है उसमे आप चिन्तन करिये। वह निर्णायक शक्ति आप मे आई है या नही और अगर निर्णायक शक्ति आप मे आ गई तो आप शीतल चन्दन का लेप करके जीवन की तमाम शक्तियो का विकास करते हुए, शान्ति के मार्ग का प्रचार करते हुए शान्ति के अग्रदूत बन सकेगें।

लाल भवन,
२६जुलाई ७२



मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।

—उत्तराध्ययन २३।५८

यह साहसिक भीम मन, दुष्ट अश्व के समान सदा दौडता रहता है ।

---

८ | मन का मनका

चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे !
शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चचल थिर कर रे !!
श्रेयांस जिनन्द सुमर रे !!!
सास उसास विलास भजन को, दृढ़ विश्वास पकर रे !
अजपाभ्यास प्रकाश हिये विच सो सुमरन जिनवर रे !!
श्रेयांस जिनन्द सुमर वे !!!

यह प्रभु श्रेयास देव की प्रार्थना है । प्रार्थना की इन कडियो मे चेतन को सम्बोधन किया है, चेतना एक आत्मिक शक्ति है, इस शक्ति से मनुष्य को समग्र जीवन का और समग्र ससार का ज्ञान होता है । चेतना शक्ति के बल से ही हित और अहित को पहिचाना जा सकता है । चेतना शक्ति के दृढ संकल्प से ही इन्सान अपने कार्य मे सफल होता है । ऐसी चेतना शक्ति को सबोधित करके कवि ने सकेत दिया है कि—

चेतन जान कल्याण करन को आन मिल्यो अवसर रे।

शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभू गुण मन चचल थिर कर रे।

हे चेजन, यह कल्याण करने का सुन्दर अवसर मिला है। इस मे जो मनुष्य जन्म मिला है तो यथा सम्भव शान्ति से शास्त्रो का श्रवण कर। शास्त्र श्रवण का प्रसग है, ऐसे अवसर पर हे चेतन, तू प्रमाद मे मत रहे। कदाचित कोई यह कल्पना करें कि मैं इस समय प्रभु के स्वरूप को कैसे पहिचानू ? क्योकि परमात्मा मेरी इन चमडी की आखो से नही दीखता है। मैं अपनी इन्द्रियो से प्रभु का सही ज्ञान नही कर सकता हू। तो यह कल्पना असगत है क्योकि यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान सीमित है। उनका दायरा छोटा है। इन्द्रिया अमुक सीमा तक ही वस्तु का ज्ञान कर सकती है। आगे उनकी गति नही है। मन की स्थिति का भी चिन्तन करू तो मन की गति भी ऐसे तो बहुत तीव्र है, लेकिन तीव्र होने पर भी वह भी सीमित ही है। अत प्रभु के वास्तविक स्वरूप को समझने में वह मन भी समर्थ नही हो सकता है। मन के माध्यम से कल्पना कर सकते हैं। तो मैं प्रभु को कैसे स्मरण करूं, और कैसे मैं आत्मा का कल्याण कर सकू ? इसके लिये बुद्धि के सामने एक प्रश्न वाचक चिन्ह बन ज ता है। इस प्रश्न का उत्तर कवि ने साथ ही दे दिया है कि तू अपने इन्द्रिय और मन से प्रभु को पहिचानने मे समर्थ नही है। अत शास्त्र के प्रमाण की बात कही गई कि—

शास्त्र प्रमाण पिछाण प्रभु गुण मन चचल थिर कर रे।

श्री श्रेयास जिनन्द सुमर रे॥

शास्त्र मे प्रभु के स्वरूप का बडा ही सुन्दरतम वर्णन है। शास्त्र के प्रमाणो से तुम प्रभु के स्वरूप को पहिचान कर इस चचल मन को स्थिर कर लो। मन के स्थिर हुए विना उस आत्मिक स्वरूप का दर्शन नही होगा। मन जितना चचल है उतनी ही आत्मा की शक्ति चचल होती है। मन के सहारे आत्मा की शक्ति प्रवाहित होती है।

इन्द्रिय तक भी मन के माध्यय से ही पहुँचा जाता है और बाहर के पदार्थो का भी मन से ही चिन्तन किया जाता है। इसलिये इस चचल मन को एक स्थान पर केन्द्रित कर दो। जो श्रेष्ठतम स्थान है जिस स्थान को छोडकर अन्य श्रेष्ठ स्थान नही है। यदि उस श्रेष्ठ स्थान के चिन्तन मे मन को लगा दिया तो वह इधर-उधर नही भटकेगा। किन्तु यदि किसी अभद्र या अधूरे स्वरूप में मन को केन्द्रित करने का प्रयास किया गया तो वह रुक नही सकेगा। उसकी स्वाभाविक चचलता बढ़ेगी और एकाग्रता उससे परे होगी। आप देखते है कि जब बच्चे के सामने एक खिलौना रखा जाता है, तो वह उस खिलौने को देखने की कोशिश करता है लेकिन जब उसकी दृष्टि आगे की ओर गिरती है तो उसके मन में जिज्ञासा पैदा होती है और बच्चा अपने सरक्षक से पूछता है कि यह क्या है? जब उसको दूसरी चीज बतायी जाती है तो फिर वह आगे का प्रश्न करता है। बच्चे का यह स्वभाव है कि वह जानकारी के लिये तन्मय हो जाता है और आगे का प्रश्न करता है। कब तक करता रहता है जब तक कि वह अपनी समझ के अनुसार सतुष्टि नही कर लेता है। बच्चा तो शरीर की दृष्टि से ऐसा ही है लेकिन एक दृष्टि से देखा जाये तो यह मन भी बच्चे के तुल्य है। बच्चे को समझाना सहज है। बच्चे की गति को रोकना सरल है। बच्चे को तुष्टि देना मनुष्य के बूते की बात है लेकिन मन को रोकना यह मनुष्य की शक्ति से थोडा परे जा रहा है। मन की गति को कन्ट्रोल करना और तुष्टि देना यह प्रत्येक मनुष्य के बूते की बात नही है। इस मन को अगर स्थिर करना है तो आप छोटे-छोटे जितने लक्ष्य है, जो चचल पदार्थ है जो नाशवान है, उन पदार्थो से उसको हटाकर अविनाशी, अटल और स्थायी तत्वो पर केन्द्रित करिये जिससे स्थिर तत्व या स्थायी स्वरूप पर केन्द्रित होने के कारण उसमे भी स्थिरता आए। वह स्थायी तत्व नही हिलेगा तो मन भी नही हिलेगा और यदि मन उसके साथ एकाकार



जो सब प्रकार के मदो—अहंकार के कारणो का त्याग करके सदा धर्मध्यान में लीन रहता है, वही सच्चा भिक्षु है।



परम श्रमण आचार्य देव **श्री नानालालजी म०**

के

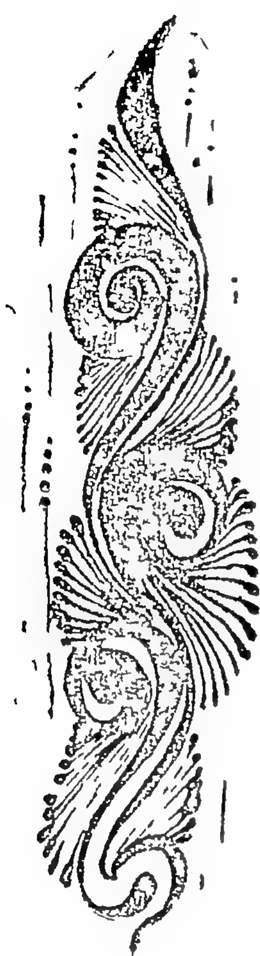
पावन-प्रवचन हम सबके लिए

मार्गदर्शक हो—यही शुभ कामना।



भीखमचंद झूमरमल सेठिया

भीनासर (बीकानेर)



धर्म-धुरा-धुरीण

प्रवचन-कला-प्रवीण

परमादरणीय आचार्य

श्री नानालालजी म० सा०

क

पावन चरण कमलो मे

हार्दिक अभिनन्दन



मोहनलाल बुलाखीचन्द चौरड़िया

(कपड़े के व्यापारी)

अलीपुरद्वार (जलपाई गुडी)

वन गया तो आत्मा के कल्याण का मार्ग वहा शीघ्र ही प्रशस्त बन सकता है। यदि तुमने मन को उस स्थायी तत्व पर नही टिकाया, नाशवान तत्वो पर मन को केन्द्रित किया तो थोडे समय तक तो वह रहेगा, लेकिन जड पर केन्द्रित होने से वह जड पदार्थ गिर जायगा, बिखर जायगा तो भागेगा और सोचेगा कि अव मैं किसको पकडूँ ? कल्पना करिये एक कपूर डलो है। कपूर की डलो के ऊपर मनुष्य अपने मन को केन्द्रित कर ले और यह सोचले कि मेरा मन कपूर से सम्वन्धित है, यह कपूर साफ है, श्वेत है। इसके साथ मेरा मन भी सम्बद्ध है और वह भी इसके समान श्वेत बने, काला न रहे, इसमे कोई धव्वा न रहे। इस भावना से कपूर की डलो पर अपने मन को केन्द्रित कर लीजिये और भावना यह रखें कि यह कपूर की डलो ऐसी की ऐसी रहे। उसमे कोई परिवर्तन नही आवे। यह ऐसी की ऐसी रहेगी तो मेरा मन भी ऐसा ही बना रहेगा। इस भावना से कपूर की डली के ऊपर अपने मन को केन्द्रित कर दीजिये। लेकिन यह कपूर की डली, या वह कपूर की टिकडी कितने समय तक उस रूप मे रह सकेगी ? क्या वह स्थिर रह सकेगी ? वैसा का वैसा रूप उसका स्थिर रहेगी ? क्या इसका कभी आपने अनुभव किया है। कपूर का उडने का स्वभाव है। वह खुला पडा रहा तो जल्दी ही उड जायेगा। और कदाचित मनुष्य उसे उडने से रोकने के लिये अपनी मुट्ठी के अन्दर बाध लेता है और यह सोचता है कि इससे यह उडेगा नही लेकिन फिर भी कपूर उडेगा ही। जव वह चीज उड़ गई तो कैसे उसके ऊपर मन टिकेगा। आप मन को उस पर केन्द्रित करना चाहते थे, उस पर मन को स्थायी करना चाहते थे, लेकिन कपूर की टिकिया तो उड गई। तो आप ज्ञान की दृष्टि से चिन्तन करिये कि कौन कौन से पदार्थ ऐसे हैं जो कपूर की टिकिया के स्व-भाव के नही है ? कौन से पदार्थ स्थिर हैं जिनके ऊपर मेरा मन सदा स्थिर बन जाये। यदि इस प्रकार का चिन्तन करने के लिए

संसार के पदार्थो का परीक्षण करते जायेंगे तो मैं समझाता हूं कि जितने पदार्थ आपकी दृष्टि में आ रहे है,वे सारे के सारे उस कपूर की टिकिया के मानिन्द ही मालूम होगे। क्या ऐसा कोई भौतिक तत्व है जो कि बिखरने वाला न हो। शास्त्रीय दृष्टिकोण से चाहे कैसा भी चित्रण करे- यह खम्भ आप देख रहे हैं, यह मजबूत है, आपको दिखाई दे रहा है। शास्त्रीय दृष्टि से खम्भ में परमाणु उड़ रहे है, प्रतिक्षण इसमें परमाणु प्रवेश कर रहे हैं और निकल रहे हैं। हमारी चमड़े की आँखे इसको समझ नही पा रही है। शास्त्रकारो का कथन है कि जो सपदा बनी है वह सम्पदा ज्यादा से ज्यादा अगर रहे तो असख्य काल तक रह सकती है, उसके बाद तो सारी की सारी बिखर जाती है। अब आप सोचिये कि मन को केन्द्रित करने के लिये किस पर टिकाना है। कभी कभी हठ योग की प्रक्रिया से साधक को बताया जाता है कि मन को केन्द्रित करने के लिये त्राटिक करे। त्राटिक का मतलब यह है कि एक चिन्ह कही दिवाल पर या किसी स्थान पर लगा दिया जाता है वह वहाँ पर दृष्टि लगाकर मन को केन्द्रित करने की कोशिश करता है। मनुष्य मन से हैरान है। मन की गति से मनुष्म घबराया हुआ है और कही सहारा मिलता है तो उस तरफ भी व्यक्ति प्रयत्न करता है। धार्मिक क्षेत्र मे विचरण करने वाले महात्माओं ने भी भगवान् के चरणो मे आन्तरिक निवेदन कर दिया और उन्होने भी कह दिया कि भगवन् ? इस मन को मैं कैसे स्थिर करूँ।

कुंथू जिन मनड़ूं किम् हिनिवाजे।
जिम जिम जतन करीने राखूँ, तिम तिम अलगू भाजे हो ॥ कुंथू जिन ॥
रजनि विचारे वस्ति उजाड़े, गहण पाया ले जाय।
सांप खाइय ने मुखड़ थोथुं एम ओलखिए न्याय ॥ कुंथू जिन ॥

कवि आनन्दघनजी अपनी साधना करते करते हैरान हो गये

और भगवान् कुन्थुनाथ से कहने लगे, भगवन् ! बताओ, यह मेरा मन क्यो वश में नही आता है ? मैं इसका कितना ध्यान रखता हू, कितना इसको लाड प्यार करता हू, यह मन जिस वस्तु की भी चाहना करता है वही वस्तु मै इसको देता हू, मन अमुक रूप देखता है तो दिखाता हू और अमुक स्थान पर ले जाना चाहता है तो ले जाता हू, जैसे जैसे यह कहता है वैसे वैसे मै इसका लाड प्यार करता हू। लेकिन यह सब प्रयत्न करने पर भी यह मन मेरी कुछ भी बात नही मानता और दूर दूर भागता रहता है। रात और दिन इस हैरानी से हैरान हू। दिन को भी यह ज्यादा देर तक एक जगह नही टिकता, जागृत अवस्था में भी दिन भर यह मन स्थिर नही रह कर इधर-उधर वेकाबू भागने लगता है और सोता हू तो भी यह हैरान करता है, शान्ति से मै विश्राम नहीं कर सकता, यह मन चचल बना रहता है और ताने बाने बुनता रहता है, कितने ही जाल बनाता है। हे प्रभु ! मैं इस चचल मन को किस प्रकार वश मे करूँ ? जब आध्यात्मिक रस मे रमने वाले महात्मा और कवि भी हैरान हो गये तो दूसरो का तो कहना ही क्या ?

आज मन को वश मे करने के तरीके अजीब से हैं। त्राटिक में दृष्टि उसकी ओर लगायी जाती है, दृष्टि को उस पर गढा कर बैठ जाता है, पलक नही गिरने देता है। लेकिन मन तो फिर भी विचलित हो जाता है। परिणाम यह होता है कि दृष्टि की रोशनी मद पड जाती है, लेकिन मन को स्थिर नही कर पाता है। हठयोग मे ऐसे अनेक खतरे आ सकते हैं जिससे मनुष्य की जिन्दगी व्यर्थ सी हो जाती है। आपने सुना होगा कि अमुक मनुष्य चतुर था और योग साधना की बडी बडी बातें करता था। एक रोज देखा गया कि वही व्यक्ति पागल होकर घूम रहा है। और अड खड बोल रहा है। यह क्यो हुआ ? इसका कारण यही है कि उसे-योग साधना कराने वाला योग्य व्यक्ति नही मिला। योग्य गुरु के अभाव मे साधना भी

विकट हो जाती है। उसी तरह से प्राणायाम है। प्राणायाम भी एक योगिक साधना है। प्रायः नासिका से श्वास को अन्दर ले जाना और नियमानुसार उसको वापिस बाहर लाकर छोड देना। रेचक और पूरक दो क्रियाये होती है। कुम्भक क्रिया की दो अवस्थायें होती है वे इस प्रकार है:– एक बाह्य कुम्भक, और दूसरी आभ्यन्तर कुम्भक। बाहरी कुम्भक प्रक्रिया वह है जिसमे श्वास को बाहर छोडकर रोकना होता है और आभ्यन्तर कुम्भक वह है जिसमे स्वास को अन्दर रखकर रोकना होता है बाहरी प्रक्रिया तो इतनी खतरनाक नही होती है किन्तु अन्दर रखने की जो प्रक्रिया होती है उसका साधन अच्छी तरह न बनपाये तो उसकी साधना तो कही रह जाती है किन्तु वातवाहक उसको नाडियो मे वायु का प्रेसर इतना अधिक हो जाता है कि उसकी नाड़िया फट सकती है मस्तिष्क की स्थिति डावाडोल हो जाती है। वह कभी कभी खतरे मे पड जाता है। मन की साधना के अनेक उपाय बताये जा सकते हैं। मन एक साथ काबू मे नही होता है। हो तो कैसे हो ? उस पर चिन्तन किया जाय तो अनेक उपाय सामने आ सकते है। लेकिन यदि चाबी पकड़ ली जाय तो जल्दी हाथ में लाया जा सकता है।

मन का बटन दबाइए

आपके हवा के लिये पखा चलता है। उस पखे की हवा लेते लेते अगर व्यक्ति घबरा जाय और वह स्वयम् पखे को बन्द करने में अशक्त हो और किसी दूसरे व्यक्ति से कहता है, या नौकर से बोलता है, भाई, इस पखे की हवा मुझे नही चाहिए। यह बहुत गति से दौड़ रहा है इसको बन्द कर दो। जिसको कह दिया वह व्यक्ति कोई ग्रामीण है, उसने कभी कही हवेलियो में पखा लगाते नही देखा और पखा चलाते भी नही देखा अतः उसको बन्द कैसे करना यह वह नही समझता है। ऐसे व्यक्ति को कहा जाय,

वह व्यक्ति उस पखे को बन्द करने के लिए अपना हाथ लम्बा करके उस पखे को पकडता है और यह सोचता है कि पखा पकड कर बन्द कर दू । क्या वह हाथ से चलते हुए पखे को पकड़ कर रोक सकता है ? नही, रोक सकता। वह यह सोचता है कि पखा हाथ से बन्द नही हो रहा है। रस्सी डाल कर पखे को खम्बे से बाध दू और इसको बन्द कर दू । यह सोच कर रस्सी डाल कर दोनो मु ह रस्सी के लेकर पखे को खम्वे से बाधना चाहता है। पखे को बाध सकता है ? रस्सी मजबूत है तो पखा टूट जाएगा और रस्सी कमजोर है तो रस्सी टूट जावेगी। वह इस तरह से भी पखा नही रोक सकता है। अगर जानकार व्यक्ति उस स्थल पर पहुच जाय और ग्रामीण व्यक्ति को हैरान होते देखे तो कहेगा, भाई, क्यो हैरान हो रहा है, वह ग्रामीण व्यक्ति कहेगा कि भाई साहब सेठ साहब की आज्ञा है पखा बन्द कर दो, हवा उनको नही चाहिए। लेकिन पखा बन्द नही हो रहा है। हाथ लम्बा करके पखे को रोक कर बन्द करना चाहा लेकिन वह नही हुआ और रस्सी डाल कर पखे को बन्द करना चाहा लेकिन वह भी नही हुआ। उस आगन्तुक ने कहा, 'रस्सी और हाथ से पखा बन्द थोड़े ही होता है। देखो मे जरा सी देर मे बन्द कर देता हू। जरासी अगुली को आगे ले जाकर वह बटन को दबा देता है और पखा रुक जाता है, पखा बन्द हो जाता है। जिस तरह पखे को बन्द करने के लिए बटन है उसी प्रकार मन के पखे को, जो मनुष्य को जीवन मे चक्कर लगवा रहा है, इसको बन्द करने के लिये अलग अलग तरीके से उपाय कर रहे हैं, वे उपाय प्राय. ग्रामीण मनुष्य की तरह कर रहे हैं। जिस प्रकार ग्रामीण मनुष्य हाथ से पखे को बन्द करना चाहता है। आज का मनुष्य भी इसी प्रकार मन को बाध कर बन्द करना चाहे तो मन काबू मे आने वाला नही है। ज्यादा जोर दिया तो पखे की पखुड़िया टूटेगी। इसका तात्पर्त यह

है कि मस्तिष्क की नाड़िया टूटेगी या इन्द्रिया नष्ट हो जावेंगी या कोई आघात लग जावेगा। सफलता नही मिलेगी।

आज के मानव की यही दशा है। वह इस मन रूपी पखे को ग्रामीण मनुष्य की तरह रोकने की कोशिश कर रहा है। वह इस मन रूपी पखे पर कन्ट्रोल करना चाहता है लेकिन जीवन कला रूपी इसकी चाबी को नही पकड़ पा रहा है। वह अगर इसके बटन को दबाने की कला समझ ले तो मन रूपी पखा स्थिर हो जाता। फिर उसके सामने कितने भी चचल पदार्थ आये, कितने भी दृश्य उसके सामने आये, उसके मन को चचल बनाने वाले ही स्वर्गीय दृश्य उपस्थित हो जाय फिर भी मन उसकी आज्ञा के बिना चचल नही होगा। इस कला को प्राप्त करना है और इस चंचल मन को स्थिर करना है, तो इसके लिये दो प्रकार के मार्ग है। एक प्रारम्भिक मार्ग और दूसरा स्थायी मार्ग। प्रारम्भिक दृष्टि से जीवन के २४ घंटे है। उसमे से आधे घटे निकालने चाहिए उसमें मन की गति-विधि को देखने की कोशिश करे। २४ घटे का सारा का सारा समय आज किस काम में जा रहा है? मन की गतिविधि को देखने मे, या मन को स्थिर करने के प्रयास में या लापरवाह बनकर जीवन को चचल बनाने में जा रहा है? अगर आप अपने जीवन की दिनचर्या को देखेंगे तो, विदित होगा कि जीवन के चौबीसों घटे पदार्थो को बटोरने के लिये व्यतीत हो रहे है। मन को वश करने के लिये कुछ भी समय नही दिया जा रहा है। आत्मा के साथ न्याय-करना चाहते है तो १२ घटे आत्मा को दीजिये और १२ घटे शरीर को दीजिये। यदि आप आत्मा के साथ न्याय की स्थिति में नही है। और शरीर के साथ ज्यादा न्याय करना चाहते है तो, चौथाई समय, छै. घटे इस इस विषय मे दीजिये। कदाचित् आपके मन की कमजोरिया अधिक हो तो छः घटे नही तो तीन घटे दीजिये, तीन भी नही दे सकें तो दो दीजिये और दो भी नहीं दे सके तो एक तो

कम से कम दीजिये। एक भी नही ? एक घंटा भर भी आपको इस ओर ध्यान देने का अवकाश नही। चौबीस घंटे हाय-हाय करते-करते चले जा रहे हैं, चौबीस घंटे मशीन की तरह दौड़ रहे हैं। और दौड़ कर भी प्राप्त क्या करने वाले है ? क्या लेने वाले है ? चौबीस घंटे इन चन्द चाँदी के टुकड़ो को प्राप्त करने मे बिता देते हैं, सौ वर्ष या ८० वर्ष की जिन्दगी सारी की सारी इसमे लगा दी और कदाचिद् कुछ सम्पत्ति प्राप्त भी कर ली, कितनी ? अरबो खरबो की प्राप्ति कर ली, उसके बाद भी आपका मन स्थिर हुआ क्या ? अब तो अरब प्राप्त हो गये अब तो सतुष्ट हैं क्या ? नही। सतुष्ट नही।

सच्चे व्यापारो बनिए

मन दौड रहा है। हमने अपने जीवन मे इतना पैसा इकट्ठा किया है, इस मन को पैसे की तरफ लगाया है कि पैसा मनुष्य के पास अरबो, खरबो हो गया है। परन्तु क्या यह आपका सारा पैसा स्थायी रूप से रहने वाला है। क्या यह आपके पास मे टिक कर रहने वाला है। अगर ऐसा नही है तो क्या अपनी शक्ति का अपव्यय नही कर रहे है ? आप व्यापारी है। यहा पर बैठने वाले भी अधिकतर व्यापरी हैं। व्यापार कैसे होता है ? उसमे आय-व्यय का ध्यान रखा जाता है और वह व्यापार आप करते हैं जिसमे व्यापारी को अधिक आय होती है और स्थायी वस्तु प्राप्त होती है। इस बात का ख्याल रखे और कार्य करे तो वह सच्चा व्यापारी है और जिसमे आय व्यय का हिसाब न रखा जावे, अन्धाधुन्ध चलता रहे, उसमे व्यय अधिक हो और आमदनी कुछ न हो तो क्या वह सच्चा व्यापारी है ! आप सब चुप क्यो हो। आप कहते हैं, महाराज, हम सावधान है। लेकिन सावधान इस विषय मे कि जो नाशवान पदार्थ हैं जो पदार्थ स्थायी नही है उनके लिये शरोर लगा रहे हैं उसके

व्यापार में शरीर लगा रहे, मन, वचन, काया उसमें लगी रहे, हैं २४ घटे उसी मे लगी रहे, आगे के लिये आप नही देख रहे है और जब कभी मृत्यु का दौर दौरा आया, उस समय विवश होकर, यह सब छोढकर आप चले जायेगे। तब आपके साथ कौन जायेगा, क्या स्थिति वनेगी इसका भी कभी आपने चिन्तन किया है ? आप अपने जीवन की समग्र शक्ति का अपव्यय कर रहे है, उसके मुनाफे की तरफ आपका ध्यान नही है। आध्यात्मिक जीबन की तरफ आपका ध्यान नही है। आप चतुर व्यापारी है पर इस व्यापार मे आय व्यय का हिसाब नही है तो इस स्थिति से आपको कुछ ऊपर उठना है उसके लिए कम से कम एक घन्टा मन की साधना मे लगाना है। इससे आपका मन स्वाभाविक बन जायेगा और इन सारी प्रवृत्तियो से हटने लगेगा। एक इन्सान यदि अपने मन को स्थिर करके चलता है तो वह अपने इच्छित कार्य कर सकता है। यह इन्सान के हित में है। यह एक अपूर्व लब्धि है। इसको इन्सान खो रहा है मैं इसके लिए टेम्प्रेरी उपाय आपको बता रहा हू। यह टेम्प्रेरी उपाय यह है कि घटे भर की साधना में आप बैठे। यह चिन्तन करे कि यह जो मैंने २४ घटे बिताए है, इन चौबीस घंटो के अन्दर मैने क्या-क्या किया है। इस बीच मे कितने कार्य तो नैतिकता के हुए है ? और कितने अनैतिकता के हुए है ? यह देख लीजिए कि मैंने कितनी गल्तियाँ की है ? और ये गल्तिया हुई है ? तो लाचारीवश हुई है या अज्ञान से हुई है। लाचारीवश हुई है तो उसका प्रायश्चित रख दीजिए जिससे मन पर उसका असर हो, और मन यह अनुभव करे कि ऐसी गल्ती करूँगा, तो मुझे यह दण्ड मिलेगा और इससे आपकी यह गलती छूट जायेगी और भविष्य मे ऐसा ध्यान रख कर ही कार्य किया जायेगा। आपका मन भी सोचेगा। इस प्रकार की भावना रख कर कुछ क्षण वह अपने पूर्व जीवन के २४ घण्टो का चिन्तन करे और फिर थोड़ा-

सा भावी जीवन के २४ घण्टो का नक्शा खीचें, यह नक्शा सामने रखे कि भविष्य के इन २४ घण्टो मे वह इस प्रकार की गलती नही करेगा। तो यह मन की एक प्रारभिक साधना है। इसके पश्चात् कुछ मिनिट के लिये हाथ की अनुपूर्वी का अभ्यास किया जाए जब कुछ समय तक यही अनुपूर्वी चलेगी तो मन को आप एकाग्र कर सकेंगे। इससे आगे के अवशेष समय मे आप स्वाध्याय करिये। स्वाध्याय कैसे हो ? शास्त्रो को प्रमाण स्वरूप समझिये और उस पर मन को स्थिर करने का प्रयत्न कीजिये। परन्तु आज हो क्या रहा है ? इसके लिए आपके पास समय नही है किन्तु यदि कोई लडाई झगडे की बात अखबार मे आ गई या अड बड बात आ गई, तो आप उस अखबार को पढेंगे, और दूसरी बातो मे समय को गवा देंगे,लेकिन शास्त्रो के स्वाध्याय के लिए उनको आधा घटा भी नही मिलता है और कदाचित मैं यहा पर इस आधे घण्टे के लिए मागनी कर दू। यहा बैठने वाले मेरे भाई एक घटा भर का स्वाध्याय का नियम ले और एक घटा नियमित स्वाध्याय करे ऐसी मागनी मैं कर दू ? क्या मागनी नही करू। बस कहते जाइये। स्वाध्याय की फुरसत नही है। उपन्यास पढ लेगे परन्तु शास्त्रो का स्वाध्याय नही होगा। इस प्रकार मन से हैरान होकर इस मन को कैसे पकड़ पायेगे। जब मन में कोई चीज बैठ जाती है तो मन उसके लिए हठोला हो जाता है। इसी प्रकार शास्त्रो के स्वाध्याय की बात, इसके व्यापार की बात एक घटे भर के लिये, आधे घटे के लिए या कम से कम १५ मिनिट के लिये ही कर लीजिये। अगर इतना स्वाध्याय नियमित रूप से चलता है तो मन को एक जगह पर टिकाने का एक साधन मिल जायेगा। अब स्वाध्याय किसका करना है, इसके करने का तरीका क्या है ? शास्त्रो का स्वाध्याय कैसे हो ? आदि बातो को समझाने के पूर्व मे आपके मन को एकाग्र करने के लिये प्रारभिक भूमिका बता रहा हूँ। आप पुस्तक पढ़ने के लिए पहले

क्या सोचते है ? वर्ण माला ? वर्णमाला को नही समझे और दसवी कक्षा का पाठ आपको पढने के लिये दे दे, एम० ए० का पाठ दे दे, जब ए० बी० सी० डी० का ज्ञान नही हैं तो क्या आप उसको समझ लेगे ? इसी दृष्टिकोण से स्वाध्याय का भी तरीका है। यह तरीका है कि चाहे जैसी पुस्तक हो, पर हो धर्म शास्त्र की, चाहे वह शास्त्रो का अनुभव हो, उस धर्म पुस्तक के स्वाध्याय के लिये आप उसका एक पेज ले लीजिये और उस पेज का भी एक पैराग्राफ लीजिये। प्रारंभिक रूप से उस पैराग्राफ को आप पढिये और उस पैराग्राफ को पढने के बाद अपने मु ह से अपने कानो को ही वह सुना दे। दूसरा सुनने वाला हो तो ठीक है वरना अपने कान तो सुनने वाले है ही। कानों को सुनाकर आगे को बढे। इस प्रण के साथ आप इसको पढिये कि मुझे इसको पुन' सुनाना है तो आपका मन एकाग्र हो जायेगा, मन उसमें दत्तचित्त होकर एकाग्रता से उसको पढेगा। फिर दूसरे पैराग्राफ को लीजिये। उसके बाद दूसरे पृष्ठ को लीजिये और धीरे धीरे दो पृष्ठो तक बढिये। इसमें सबसे पहिला लाभ होगा कि जितने समय तक पढेगे आपका मन एकाग्र हो जायेगा। दूसरा लाभ यह होगा कि आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जायेगी, कई व्यक्तियो को यह शिकायत होती है कि थोड़ी सी बात देखते ही वे भूल जाते है। हमारी स्मृति नही है क्या करे ? मैं पूछता हू आज व्याख्यान मे क्या सुना। कहते है, सुना तो था, याद नही है। उनकी स्मृति कहा गायब हो गई। मन डोलायमान हो रहा था। एकाग्रता मे स्मृति तीव्र हो जाती है और स्मृति से विषय का ज्ञान कर पायेगे। तीसरा लाभ यह होगा कि आपको वक्तृत्व शक्ति आयेगी। आपको बोलने की कला आयेगी। चौथा लाभ यह होगा कि पुस्तक मे क्या रहस्य है ? उसका क्या विषय है, उस विषय की बारीकी को आप पढ़ पायेगे और वह आपके जोवन में हित साधक है या नही ? इसका मनन कर पायेगे। इस तरीके से लाभ की स्थिति चली तो आपकी

सामायिक का जो समय है वह सहज ही निकल जायेगा। सामायिक कर तो लें परन्तु घण्टे भर तक मन नही लगता है। यह प्रश्न हमारे सामने आता है। परन्तु इसमे इस तरह से मन को एकाग्र करके, इस तरह का एक प्रोग्राम बना कर मन को साधने की दृष्टि से चलें तो मन को एकाग्र करने का यह एक प्रारंभिक साधन हो सकता है। मन को साध लिया तो शरीर की स्थिति ठीक बन जायेगी। उसके बाद स्थायी रूप से मन को केन्द्रित करना है, अभी आपको बिजली के बटन की बात कही थी। जो बिजली के बटन का ज्ञान रखता है उसको यह भी मालूम रहता है कि कहा से शक्ति आ रही है और कहा पर शक्ति केन्द्र है। वह उससे सम्बन्धित सब चीजो का ज्ञान रखता है। वैसे ही शरीर के अन्दर रहने वाले जो तत्व है, यह शरीर ही जीवन नही है, मैं यहा पर मूल स्थिति को समझा रहा हू। इसके साथ-साथ आप मन को और उसके साथ-साथ शरीर को समझेंगे, तो शरीर से सम्बन्धित इन्द्रियो का ज्ञान भी कर सकेंगे। इन्द्रिय और मन से शरीर का ज्ञान होगा, उससे आत्मा का ज्ञान करेंगे और आत्मा के ज्ञान से निर्णायक शक्ति को पहचान पायेंगे। इसी दृष्टि से मैं जीवन की परिभाषा की व्याख्या करना चाहता हू—वह है सम्यक् निर्णायकम् समता मय च यत् तत् जीवनम्। क्या प्रश्न चल रहा है? जीवन क्या है? समयक् निर्णायकम्—निर्णायक शक्ति जिसमें होती है उसको पहिचान सकेंगे। कल मैंने इसका थोडा रूपक रखा था। इन्सान निर्णायक शक्ति का विवेचन नही कर पा रहा है। निर्णायक शक्ति के रूप मे स्थायी तत्व आत्मा को माना जाता है। क्योकि आत्मा ज्ञानवान है निर्णायक है यदि आत्मा को ज्ञान शून्य माना जाय तो उसका अस्तित्व ही मिट जायेगा, जिसमे ज्ञान नही है वह आत्मा नहीं है भले ही उसको आत्मा की सज्ञा दे दो गई हो। ज्ञान के विना आत्मा नहीं हो सकती है और विना ज्ञान के निर्णायक शक्ति नही आती है।

ज्ञान के बिना आत्मा का स्वरूप मिट जायेगा और उसे जड तत्व समझ लिया जायेगा। यह पाटा है। यह ज्ञानवान है? या अज्ञानवान आप इसका ध्यान करिये। यह जड है इसमें ज्ञान नही। इसके अन्दर किसी तरह की चिन्तन शक्ति नही है। यह कुछ भी नही कर सकता है। चाहे आप इसको चोट मारो यह उसका निर्णय नही कर सकता है। यह भी नही समझता है कि ऊपर कौन बैठा है लेकिन जो ज्ञानवान, आत्मा है वह इसका निर्णय कर पाती है क्योकि निर्णय उससे किया जाता है—इसको सस्कृत की दृष्टि से कहा है—"निर्णीयते अनेन", जिससे निर्णय किया जाये, निर्णीयते यस्मात्—जिसमें से निर्णय किया जाये और निर्णीयते यस्मिन्- जिसमे निर्णय किया जाये। ये सभी अवस्थाए आत्मा की ही है अत उसमें निर्णायक या ज्ञान शक्ति को मानना होगा, निर्णय की शक्ति ज्ञान के साथ है, ज्ञान से चिन्तन मिलेगा उससे चिन्तन का स्वरूप स्पष्ट होगा। कुछ दार्शनिक ऐसा बोल देते है कि आत्मा मे ज्ञान होता है लेकिन जब आत्मा परमात्मा रूप बनती है तब ज्ञान नष्ट हो जाता है।

यह भी एक हास्यास्पद बात है, इसमें गहरी दार्शनिक चर्चा है मै उसे अभी नही ले रहा हू, मूल में मैं आपको निर्णायक की बात समझा रहा था कि मूल रूप में जो गुण जिसमे नही है, अर्थात् अनिना भाव सम्बन्ध से जिसमे ज्ञान नही है, वह ज्ञान उसमे कैसे रहेगा और मोक्ष अवस्था में सर्वथा नष्ट हो जावेगा। यह कैसी विशेषता है? विशेषण लगाइये, यह असस्कारित जीवन है। ऐसा व्यक्ति निर्णायक स्थिति नही समझ पाता और उसको जीवन का स्वरूप समझ नही आता और हर समय धोके की धड़ी में रहता है। जड तत्व को बेचने पर कुछ पैसा बटता है लेकिन मनुष्य जीवन इस स्थिति मे है कि यदि उसने निर्णायक स्थिति का पता नही लगाया और केवल मुर्दा अवस्था मे ही रह गय। तो उसके शरीर की एक दमडी भी नही

बटेगी और श्मशान मे लेजाकर उसको जलाना होगा। यदि मन को केन्द्रित करे और चाबी पकडना चाहे जीवन की, तो निर्णायक स्थिति की, शक्ति को निखालस रूप से समझने का प्रयास करें और यह समझने का प्रयास थोडे रूप मे होता है तो भी हो जाता है और एक दिन मन की केन्द्रित अवस्था आ जाती है। यह स्थिति नही आती है तो मन डावाडोल हो जाता है।

सच्चा साधक

निर्णय के अभाव मे व्यक्ति कभी कभी समस्या में उलझ जाता है। इसके विषय मे कल आपके सामने मैं एक रूपक रख रहा था। आपको ध्यान होगा। एक तरुण की बात आरही थी। गोविन्द नाम का तरुण भयावह स्थिति के वीच मे बैठा हुआ है। किसके साथ ? अपनी धर्म पत्नी के साथ, धर्म सहायिका के साथ। वह पत्नी धर्म के अन्दर मददगार थी, वह पति को विषयो में डुबोने वाली पत्नी नही थी। उस गोविन्द के मन मे पत्नी की बात सुन सुन कर उल्लास पैदा हो रहा है और एक तरफ मन मे ग्लानि का अनुभव भी हो रहा है। उसने जव पूछा कि तुमने उस साधु के सामने क्या सकेत दिया, तुम्हारा एक गया आदि। तो उसकी पत्नी ने कहा नाथ, उस व्यक्ति ने अपने शरीर के अन्दर भस्मी रमा रखी थी, चर्म उसके पास था, कमण्डलू था और वह साधु अवस्था की दृष्टि से चल रहा था। मैंने जिस साधु जीवन के स्वरूप को समझा वह उसमे थोड़ा कमजोर था क्योकि ससार के नाशवान पदार्थों से ऊपर उठता है, उसकी भावना आध्यात्मिक जीवन की ओर होती है, उसके सामने कैसा भी प्रदर्शन क्यो न हो लेकिन वह अपने मन को उस तरफ चचल नही करता है। जिस प्रकार ऊपर का वेश है वैसा ही अन्दर का जीवन रख कर चलता है। दोनो ही स्थितिया एक सी होती हैं। दोनो पहलू उसके सुरक्षित रहते हैं तो उसका साधु जीवन सुरक्षित

रहता है लेकिन अगर एक चीज गायब हो गयी तो उसका साधु जीवन अधरा हो गया। उसने चाहे जैसा वेश लिया हो, लेकिन मैं अपनी दृष्टि से सोच रही थी, चिन्तन कर रही थी कि साधु ससार के सारे पदार्थों से विरक्त होता है। और जब भिक्षा की दृष्टि से घर में प्रवेश करता है तो उसकी दृष्टि चंचल नही होती है। गृहस्थ के घर में कौन सा सामान है, क्या वस्तुये कहां पड़ी है, भाइयों बहिनों के पहिनने के कौन से वस्त्र है, निपटने का स्थान कहां है ? आदि इन सब बातों की ओर साधु का विशेष ध्यान नहीं रहता है, उसका ध्यान किधर रहता है ? उसका ध्यान इस ओर रहता है कि जब वह भिक्षा के लिये चले तो नीची निगाह रख कर चले, गृहस्थ के घर में प्रवेश करता है और जहां उसकी रसोई है वहा वह प्रवेश करता है तो यह देखता है कि सूजती रसोई है या नहीं, छोटी मोटी चीजों को उठाकर इधर उधर तो नही किया जा रहा है, कही बटन दबाकर प्रकाश करके भोजन तो नही दिया जा रहा है, हरी को छू कर तो भोजन नही दिया जा रहा ह, उस ओर साधु का ध्यान रहता है तो वह साधु बाह्य और आन्तरिक स्थिति को ठीक लेकर चलता है। मैंने सुना है आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब फरमाया करते थे।

"ईर्या भाषा एषणा ओलखजो आचार,
गुणवन्त साधु ने देखने वन्द जो वारंवार।

साधु मे ईर्ष्या समिति कैसी हो, भाषा क्या बोल रहा है, ऊटपटाग भाषा बोल रहा है या हितकारी भाषा बोल रहा है, गवेषणा यानी गोचरी की उसकी स्थिति कैसी है, कैसी गवेषणा कर है इससे उसके बाह्य और आन्तरिक जीवन की पहिचान हो सकती है। आचार्य श्रीजी महाराज साहब ने फरमाया था। उसी को शास्त्रीय प्रमाण से मैं आपके सामने रख रहा हूँ कि साधु जीवन की आन्तरिक और बाह्य स्थिति सुरक्षित रहती है तो उसका जीवन

ठीक तरह से चलता है। गोविन्द ने कहा प्रिये, उसने क्या कहा ? भिक्षा लेकर चला गया तो उसने अन्दर की चीजें देखी नही, बाहरी दृष्टि से हवेली देखने लग गया तो उसको क्या सार्टीफिकेट दे दिया कि एक गया। उसने कहा नाथ ! बाहरी हवेली की भी रौनक है और साधु बन जाने के बाद स्वाभाविक दृष्टि पड़ गयी तो ठीक है लेकिन घूर-घूर कर अनिमेष दृष्टि से खडा रह कर देखना यह उसके मन की चचलता प्रकट करता है और आन्तरिक जीवन का इससे साधुपन चला जाता है। मैंने कहा अन्तर और बाहर का साधुपन। बाहर का साधुपन जैसा वेश मे लगता है वैसा है पर एक अन्दर का गया। मैंने तो उसको सावधानी दिलायी। मेरी कोई बुरी भावना नही थी। गोविन्द सुनकर चकित हो गया। आश्चर्य करने लगा। यह अलौकिक बात प्रथम बार सुन रहा हू। मैं क्या कहू। मेरी धर्म पत्नी कहू या ज्ञान की दृष्टि से उसे उच्च स्थान पर बैठाऊँ। यह अत्यन्त जिज्ञासा रख कर आगे का प्रश्न करता है।" उसको कह दिया तुम्हारा एक गया, वह तो समझ मे आ गया। उसने सकेत किया, तुम्हारे दोनो गये। तू क्या समझी ? "प्राणनाथ ? वह थोड़ा चचल जरूर था। पर उसकी बुद्धि ने मेरे अभिप्राय को समझ लिया। उसने संकेत दिया। मनुष्य जीवन मिला है, उसके साथ-साथ पूर्व जन्म की पुण्याई से सारे साधन उपलब्ध हैं। करोड़-पति का घर है, खाने पीने पहिनने की वस्तुओ की कमी नही है, यह सब होने के बावजूद भी यदि तू अपने सासुजी के अभिप्राय के अनुसार कजूस बनी रही और दान पुण्य नही किया तो जीवन खोखला रह जावेगा। आन्तरिक और बाह्य दोनो जीवन चले जावेंगे। न तो ऊपर से स्वच्छ वृत्ति की स्थिति और न अन्दर की स्थिति से वैराग्य भावना। पहला अर्थ तो यह लिया। दूसरा अर्थ यह समझा कि मुझे उस साधु ने यह सकेत दिया कि जीवन मे तीन

गुण होते हैं। सत्वोगुण, रजोगुण और तमोगुण।' सत्व और रजोगुण उसमें से चला गया। जो गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी इतना ख्याल रहता है कि साधु ऊट पटांग बातो में न लगे और वैराग्य भावना लेकर चले और अन्तर और बाह्य में ठीक रहे। साधु की भी मगलमय कामना नही करता वह रजोगुण और तमोगुण में रहता है। उसने सकेत किया रजोगुण और तमोगुण दोनो चले गये इसलिये दो चले गये। मैंने उत्तर दिया कि तुम्हारे तीनो जाय। गोविन्द कहने लगा कि इसका मतलब क्या है कि तुम्हारे तीनो जांय। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनो मनुष्य मे रहते है। रजोगुण रहता है, राजसी प्रवृत्ति रहती है और राजनैतिक दृष्टि से भाग लेता है और मन को उस ओर दौड़ाता है और रजोगुण मे प्रवृत्त रहता है तो दुर्व्यसन उसमें लगे रहते है। सतोगुण रहता है तो धार्मिक जीवन बिताता है और समता के साथ रहता है। इसान को तीनो गुणो से भी परे होना चाहिये। जैसा कि गीता में कहा है

त्रिगुणातीतो भवार्जुन ?

तीनो गुणो को नष्ट करके सनातन भाव में चले जाओ।

असत्य को झुकना पड़ा

तीनो साकेतिक शब्दो का अर्थ जब गोविन्द ने सुना तो उसका दिल दहल गया। वह सोचने लगा कि बडे बडे महात्माओं के पास भी इस प्रकार की गूढ बाते नही मिलती। अपनी धर्म पत्नी को क्या उपमा दूं, किस प्रकार इसका सत्कार करूं। विना निर्णय के कोई कार्य होता है तो गलत होता है। माता पिता की आज्ञा से मैं यहां इसको लेकर आया और अगर इसको कुए में धक्का दे देता तो मैं इस वहुमूल्य रत्न को खो देता। मेरी क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उसके मन में ग्लानि होने लगी और उसका चेहरा मलीन होने लगा। पत्नी कहती है प्राणनाथ ! "मैने आपको सही बात सुनायी और

सत्य सत्य बात कही उससे आपको प्रसन्न होना चाहिये, फिर चहरे पर मलीनता किस प्रकार की ?" उसने कहा, प्रिये, "तुम्हारी बातो से मे बहुत प्रभावित हू, तुम जैसी सत्य निष्ठावान पत्नी मिली और धर्म मे भी आगे वढ रही है। इससे मुझे बडी प्रसन्नता है। यदि मुझे विषय लोलुप और ससार मे फँसाने वाली पत्नी मिल जाती तो मेरे जीवन को वासनाओ मे डाल कर नष्ट कर देती। किन्तु मुझे तुम्हारी जैसी पत्नी मिली है जो जीवन को उच्च शिखर पर पहुचाने की कोशिश करती है। ऐसी पत्नी को खत्म करने के लिये पिता की आज्ञा लेकर चला उसका पश्चाताप और ग्लानि हो रही है।" पत्नी कहने लगी वस्तु स्थिति को आपने सुन लिया लेकिन "मातेश्वरी और पिताजी ने जो आदेश दिया है, अब आप उनकी आज्ञा का पालन करिये।"

मेरे मोह मे मत फसिये। यदि उन्होने आपको कुए मे धकेलने को आज्ञा दी है तो आप कृपा पूर्वक मुझे कुए मे धकेलिए और परमात्मा के साथ एकाकार होने मे मुझे सहयोग दीजिये। मैं उस समय भी परमात्मा मे ध्यान रखूँगी और सोचूँगी कि मेरे जीवन मे यह निर्णायक क्षणअपने सत्यस्वरूप को समझाने के लिये ही आया है। यह सुनकर गोविन्द अत्यन्त ही दु खित हो गया। हा ! हा ! अरे अरे मैं कैसी पत्नी को कुए मे धकेलने को जा रहा हू। देवी, क्या तू आज मुझे अकेले को छोडकर स्वर्गीय आनन्द को लूटने जाना चाह रही है। कुए मे तुझे नही गिरना है, मुझे गिरना है। क्योकि माता पिता के पास चला गया तो वे दूसरी स्त्री के साथ मेरी शादी कर देंगे और फिर मेरा जीवन अन्धकार के कुए मे गिर जायेगा। तुम्हारी जैसी धर्म प्रिया के विना जीवन अन्धकारमय हो जायेगा। अत· हम दोनो मिलकर प्रेम से धार्मिक महोत्सव करें और घर घर धर्म को फैलावें। दोनो इस प्रकार का विचार कर अपने घर की ओर चले। माता-

पिता देख रहे थे कि उनका पुत्र अपनी स्त्री के साथ वापिस आ रहा है। उनकी दूर से ही दृष्टि पड़ी कि पुत्रवधू को साथ लेकर वह आ रहा है। दोनो ने माता के पैर छूए। नसस्कार किया तो माता ने भी मुँह मोड़कर आशीर्वाद नही दिया। पिता ने भी मुँह फेर लिया। गोविन्द ने कहा, पिताजी आप क्यो नाराज हो रहे है? क्या करू मैंने आपकी आज्ञा का पालन नही किया है। आप मेरी बात को सुनिये। पहले किसी भी बात का तथ्य निकालिये, फिर उस पर निर्णय कीजिये। सहसा विदधीत न क्रिया। जल्दी मे कोई कार्य नही किया जाना चाहिये। मैं इसको कुए मे गिराने के लिये तैयार था और आपकी यह पुत्रवधू भी इसके लिये तैयार थी और इसने कोई विरोध भी नही किया। किन्तु मैं यह निवेदन करना चाहता हू कि आपने जो यह निर्णय किया है यह क्यो किया? ये जो तीन बाते थी इन तीन बातो का अर्थ समझे बिना, उस पर विचार किये बिना आपने आज्ञा दे दी और मैं भी उसके लिये तत्पर हो गया। वहा पर मैंने इससे उसका अर्थ पूछा। इस प्रकार गोविन्द ने उन सारी बातो को माता-पिता के सामने रखा और उसको सुनकर माता पिता अत्यन्त ही दुखी हुए। उनकी आंखो में आसू भर आये और अपनी पुत्रवधू के चरणो पर गिर कर कहने लगे हे देवी, तुम्हारा जीवन धन्य है। छोटी अवस्था के अन्दर भी तुमने सत्यनिष्ठा का परिचय दिया है, धर्म भावना का परिचय दिया है, वह हम नही भूल सकते है। यह सारा घर, यह सारी सम्पदा अब तुम्हारे चरणो मे है। इस प्रकार एक शान्ति का वातावरण, प्रेम का साम्राज्य, धार्मिक भावना का साम्राज्य उस परिवार मे आया और वह परिवार एक आदर्श परिवार वन गया। ऐसी भावना आप अपने परिवार के अन्दर रखने को तैयार हैं तो आप आज आत्मा के स्वरूप को समझने

के साथ साथ जीवन क्या है ? उसकी परिभाषा चल रही है। उसको आप अपने मन मे स्थायी रूप से बिठाइये तो आपकी हैरानी समाप्त हो जायेंगी और हैरानी समाप्त होने के साथ साथ धर्म ध्या की जागृति करते रहेगे ती आपका जीवन भी ऐने मगलमय प्रसग के साथ भगवान श्रेयास की प्रार्थना के अनुरूप बन सकेगा।

लाल भवन
२७ जुलाई ७२





सोच समझ कर काम करने से मनुष्य अनेक सकटो से बच जाता है। अयत्न पूर्वक किया गया काम चाहे वह धर्म का ही क्यो न हो, उसमे अनिष्ट की सम्भावना रहती ही है। इसीलिए बुद्धिमानो ने कहा है कि —पहिले सोचो, समझो, फिर करो।

—जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म०

× × × ×

पूरे निर्णय के साथ किया गया कार्य ही हितावह होता है।

—महात्मा गाधी



अलमप्पणो होंति अलं परेसिं

—सूत्रकृताग १२।१६

ज्ञानी आत्मा ही स्व और पर के कल्याण मे समर्थ होता है।

---

९ | परम–आश्रय

प्रणमु वासुमपूज्य जिननायक सदा सहायक तू मेरो,
विषम वाट घाट भयथानक परमाश्रय शरणो तेरो ···॥

यह प्रभु वासपूज्य भगवान की प्रार्थना है। नामो की स्थितियो के साथ कविता की स्थिति भी परिवर्तित हो रही है और भावो का संकलन भी विभिन्न प्रकारो से आ रहा है। वासपूज्य भगवान के चरणो में जो कुछ भी प्रार्थना का प्रसग आया है, इस प्रार्थना मे कल की प्रार्थना से आज कुछ अन्तर है। कल की प्रार्थना मे चेतन को सम्बोधन करके सावधानी दिलाई थी कि तू अपने वर्तमान जीवन को कल्याण के मार्ग पर लगा दे, जब कि आज की प्रार्थना मे वासपूज्य भगवान को सहायक के रूप में पुकारा जा रहा है, और वह भी सहायता कहाँ ? तो उसका सकेत दिया है, "विषम वाट-घाट" विषम-भयकर रास्ता है, पहाड़ आदि भयकर जगली स्थान है।

जहाँ पर चोर डकैतो का भय है, आदि बातो को लेकर भयानक अवस्थाओ का वर्णन किया गया है, और सब अवस्थाओ मे यह अभियाचित किया गया है कि यदि आपकी कृपा रहे तो सब स्थानो पर मैं कुशलतापूर्वक गमन कर सकता हू, अपनी स्थितियो को सुरक्षित रख सकता हू। प्रार्थना करना प्रार्थना की दृष्टि से उपयुक्त है, लेकिन प्रार्थना के अन्दर आये भावो को तात्त्विक दृष्टि से जीवन के साथ सम्बन्धित करना, सिद्धान्त की सुरक्षा भी रहे और जीवन के क्षेत्र मे भी प्रगति हो यह विशेष महत्व की बात है। इस प्रार्थना से सहसा यह समझाया गया है कि कितना भी भयावह स्थान हो और कैसी भी विकट स्थिति हो, लेकिन वहाँ पर भगवान को सहायक मान लेने से सब दुविधाये टल जाती हैं, और यह जीवन निर्बाध होकर आगे बढ जाता है।

बात तो एक दृष्टि से उपयुक्त लगती है, लेकिन दार्शनिक दृष्टि से तर्कप्रधान व्यक्ति की निगाह मे इस प्रार्थना मे भी कई प्रश्न खडे हो जाते हैं। विचारक व्यक्ति इधर शास्त्र का श्रवण करता है, उस शास्त्र के श्रवण से यह उसको अवगत होता है, शास्त्र के मर्म की स्थिति का बोध होता है, तो वह यह सोचता है कि सिद्धान्त की दृष्टि से भगवान तटस्थ हैं, दृष्टा हैं। वे सासारिक कार्यों मे या ऐसे प्रसगो के ऊपर कभी उपस्थित नही होते। वे अपने स्वरूप मे तल्लीन हैं। जब भगवान अपने स्वरूप रमण मे अपनी अवस्था को रख रहे है तो प्रार्थना के प्रसग मे यह प्रार्थना करें कि भगवान आपकी सहायता से हमारी ये सब बातें हट जायगी यह कैसे सभावित हो सकता है? इसमे अपेक्षा दृष्टि से सोचने की आवश्यकता है। यद्यपि भगवान अपने स्वरूप मे सदा के लिए विद्यमान हैं और वहा से जरा भी विचलित नही होते और न कभी इस भू-मण्डल के ऊपर आकर किसी के सहायक के रूप मे उपस्थित होते हैं जैसा कि आज

का सिपाही किंवा पुलिस दु.खनिवारण की दृष्टि से मनुष्य के लिए सहायक बनती है या ऐसी कोई आततताई की स्थिति बन जाती है तो उसमें उसका सहारा लिया जाता है, उस तरह का सहारा तो भगवान से मिलने वाला नही है। लेकिन भगवान का सहारा भगवान के मार्ग से जो हमें मिलता है उस सहारे से ही यह आत्मा अपने गन्तव्य स्थान पर निर्विघ्नता के साथ पहुंच जाती है। इस दृष्टि से भगवान को सहायक के रूप मे माना जाय, भगवान चाहे पहुचे या न पहुंचे लेकिन भगवान का मार्ग सर्वत्र विद्यमान है। जहा कही भी आप अवलोकन करना चाहे। उस मार्ग को ध्यान मे रखकर उस मार्ग के सहारे यदि चले तो वह भगवान का ही सहारा है। यदि हम उनके बताये हुए मार्ग के सहारे चल रहे है तो भगवान के सहारे ही चल रहे है, और यदि मार्ग से भटककर अर्थात बताये हुए उस रास्ते से हटकर एकान्त गुफा मे भी जाकर बैठ जाते है और यदि वहां पर रट लगाते है कि भगवान आप मेरे सहायक बनो, मैं आपका जप कर रहा हूं आपकी पूजा कर रहा हू आपके लिए तप कर रहा हूँ अतः आप महरबानी करके इस गुफा के अन्दर मेरी सहायता करो। इस भावना से यदि वह बैठा रहे और एक जिन्दगी नही अनेक जिन्दगिया बिता दे, लेकिन फिर भी भगवान की सहायता नही मिल सकती, क्योकि भगवान की सहायता अविधि से नही मिलती है, विधि से मिलती है। भगवान का मार्ग ऐसा है जो कि राजमार्ग है। उस राजमार्ग पर जो भी पहुच जाता है उसको वहां पर भगवान की सहायता स्वतः प्राप्त हो जाती है। एक मनुष्य कमरे मे प्रवेश करे और उस कमरे के दरवाजे को बन्द करके अन्दर से कूंठा (सकल) लगा दे और अपनी आखो पर पट्टी बान्ध ले, फिर वहां बैठकर सूर्य से प्रार्थना करे कि सूर्यनारायण तू आ और मुझे प्रकाश दे, मैं अन्धकार में बैठा हुआ हू। तू आ। मेरे नेत्रो को खोल

और अपना प्रकाश यहा विस्तार रूप से फैला दे। इस प्रकार वह व्यक्ति उस कमरे मे बैठकर सूर्य की प्रार्थना करे तो क्या सूर्य वहा कमरे मे जाकर प्रकाश देगा ? एक दिन की प्रार्थना से नही, दो दिन की प्रार्थना, दो दिन की ही नही तो १० महीनो तक भी वह प्रार्थना करे सारी जिन्दगी भर करे और कल्पना कर लीजिये कि ऐसी अनेक जिन्दगिया प्रार्थना करता रहे लेकिन फिर भी सूर्य उस कमरे मे जाकर प्रकाश देने वाला नही है। यदि उसको प्रकाश लेना है तो उसको यही कहा जाय कि जो तेरी आखो पर पट्टी वन्धी हुई है उस पट्टी को स्वय तू खोल और दरवाजा खोलकर बाहर आ। यदि वह सूर्य के मार्ग पर आगया तो सूर्य का प्रकाश बिना प्रार्थना के ही उसे मिल जायगा। सूर्य की साधना करने की भी जरूरत नही है, लेकिन उसके मार्ग पर आने की आवश्यकता है। वह व्यक्ति अपने आख की पट्टी खोलकर दरवाजे के बाहर आयेगा और उसके मार्ग पर आ गया तो सूर्य की सहायता स्वतः उसको उपलब्ध हो जाती है। ठीक वैसे ही इस आत्मा को भगवान की सहायता के लिए प्रार्थना करने से पूर्व अपने नेत्रो की पट्टी को दूर करना है और हृदय के दरवाजो को खोलकर वीतराग देव का जो मार्ग है उस मार्ग को भलीभाँति समझना है। यदि समझकर उस पर गमन करे तो प्रभु की सहायता स्वत ही उसको मिल सकती है, परमात्मा को यहाँ आने की आवश्यकता ही नही रहती। सूर्य के प्रकाश मे आकर के वह सूर्य का प्रकाश ले लेता है, तो सूर्य को उसके पास आने की जरूरत नही है। वैसे ही वासपूज्य भगवान की प्रार्थना आप इस तात्विक दृष्टि से करें, तो उनके मार्ग के अनुसार चले तो उनकी सहायता की स्थिति आपके हाथ मे आ जाती है।

भिखारी मत वनो

लेकिन फिर भी कुछ भाइयो के मन मे यह प्रश्न तो अवश्य

रहता है कि जो भगवान के उक्त मार्ग पर चलने वाला मनुष्य है वह कभी भी मॉगणी नही करता है और शास्त्रीय दृष्टि से भी हम सुनते है "नो इह लोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा" इस लोक की कामना के लिए हम तप न करे। "नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा।" परलोक की कामना के लिए तप मत करो, आदि तो इन शास्त्रीय वातो में इस लोक सम्बन्धी सारी परिस्थितियाँ आ गई। चोर डकैत यह सव के सब इस लोक में भय उत्पन्न करते है और इन्ही उपद्रवो से वचने के लिए वासुपूज्य भगवान की प्रार्थना कवि ने की है। इसमे तो कामना कर ली गई और इस कामना के साथ चलेगे तो (निदान) तो नही हो जायगा ? यदि निदान की (स्थिति आ गई तो भगवान का मार्ग कहा रहेगा। इस प्रश्न में भी तथ्य अवश्य है लेकिन तथ्य की स्थिति को आप यदि ठीक तरह समझे तो उसका भी समाधान हो जाता है। कामना की दृष्टि से अगर वह भगवान को याद कर रहा है और निदान की स्थिति में सोच रहा ह तो वह गलत राह पर है, वह भगवान के मार्ग पर नही है, लेकिन एक शुद्ध सम्यक् दृष्टि के नाते अपने जीवन के क्षेत्र को लेकर चल रहा है, और उसको यह ख्याल है कि मुझे प्रभु के अतिरिक्त और किसी को याद नही करना है। इस प्रकार हर क्षेत्र में प्रभु को ही याद करें और इससे भिन्न तत्वो की तरफ उसका किंचित भी ध्यान न रहे इस भावना को रखकर कि वह इसमे इस लोक की मागणी नही कर रहा है तो उसका दृढ विश्वास उसको आगे बढाता जाता है, लेकिन ऐसी स्थिति सव मनुष्यो की नही वनती है। सव मनुष्य एक तरह के नही होते है, सव का मनोवल प्रवल नही वनता है और जिनका मन निर्वल है वे व्यक्ति यदि कदाचित् ऐसे प्रसंग मे सहायता भी चाहे तो भगवान की सहायता की ही कामना व्यक्त करें, लेकिन उसके अतिरिक्त किसी की सहायता की वात व्यक्त न करे।

स्वर्गीय आचार्य श्री का कथन था कि पुत्र अपने घर पर पहुंचता है और वह चाहता है कि मुझे भोजन मिले। उसकी अभिलाषा के अनुसार घर मे पुत्र की माता स्वतः उसको भोजन परोस देती है, लेकिन कदाचित् माता किसी कार्य मे लगी हुई है, भोजन नही परोस सकती है और मागने की आवश्यकता है तो वह माता से ही मागे न कि वह अन्य से जाकर मागे। इसमे आचार्यश्री का कथन था कि किसी अयोग्य से जाकर नही मागा जाय। हालांकि माता बिना मागे ही परोस देती है, लेकिन फिर भी न रहा जाय तो उससे ही याचना करे। वैसे ही साधक के लिए यह निर्देश है कि ठीक तरह से धर्म में दृढ विश्वास रखकर लगातार सम्यक् दृष्टि से अपने जीवन की यात्रा को लेकर आगे बढ़ता रहे तो किसी भी वात की मागणी की आवश्यकता नही। उसका रास्ता स्वतः साफ होता चला जाता है, और कदाचित् न रहा जाय और मागा ही जाय तो भगवान के अतिरिक्त किसी और के सामने हाथ नही फैलाया जाय इस वात का सकेत भी इसमे दिया गया है—

दूसरी वात, वीच की शताब्दी में कुछ ऐसी मान्याऐं चल पड़ी थी जिनमे अनेक तरह की मिन्नतें इधर-उधर की होने लगी और साधक अन्य स्थानो पर भटकने लगा। तव ज्ञानियो ने देखा कि जो गलत स्थान पर जाकर मिन्नत करता है, प्रार्थना करता है, इसकी अपेक्षा इसको मूल स्थान पर ही कायम रखा जाय। इस दृष्टि से प्रार्थना की पक्तियो मे यह सकेत भी दिया गया कि भाई, तू जो कुछ भी करना चाहता है वह प्रभु के चरणो मे निवेदन कर। इस दृष्टि से इन वीच की शताब्दियो मे प्रार्थना की इस प्रकार की परम्परा चल पड़ी। लेकिन इसमें कोई वीतराग वाणी के विपरीत हो यह भी नही कहा जा सकता, क्योकि जहाँ "लोगस्स" का पाठ है उसमें स्पष्ट शब्दों में कहा है :—

"सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु"

लोगस्स के इस पद में सिद्धों से प्रार्थना की है कि हेसिद्धदेव ? हमको सिद्धि दो या दिखाओ। लोगस्स का पाठ कौन उच्चारण नही करता है। इसको प्रायः सभी नें अपने प्रतिक्रमण की दृष्टि से सबसे पहले याद किया है। तो वहा पर सिद्धों से मांगणी (याचना) की गई है कि सिद्ध भगवान मुझे भी सिद्धि दे। वास्तव में भगवान सिद्धि देते नही हैं लेकिन सिद्धि की भावना जब वह अपने अन्दर जागृत करता है और उसका दृष्टिकोण मागनी का होता है तो इसका तात्पर्य यह लेना चाहिए कि तुम्हारे अन्दर में जो सिद्धि की योग्यता है अर्थात् तुम्हारो आत्मा योग्यता की दृष्टि से सिद्ध तुल्य है। उस सिद्ध तुल्य आत्मा से ही प्रार्थना की गई कि मुझे सिद्धि दे, अर्थात् मेरे अन्दर में रहने वाले भाव जो सिद्ध पर्याय हैं, उस सिद्ध पर्याय आत्मा से प्रार्थना की गई कि तुम मुझे यह जीवन दे दो। आप कभी कहेगे कि, क्या यह बात कही सम्भावित हो सकती है। अपने आपको सिद्ध मान कर उससे सिद्धि की याचना की जाय क्या यह सम्भव है ? इसके लिए कहा गया है कि किसी नय की दृष्टि से सिद्ध तो पूर्ण सिद्ध पर्याय है लेकिन योग्यता को दृष्टि से भव्य आत्मा भी सिद्ध रूप में रही हुई है। इसीलिए कहा है कि **सिद्धां जैसा जीव है, जीव सोही सिद्ध होय। कर्म मैल को आंतरो, बूझे विरला कोय।** आप यह उच्चारण करते है। इसमे किस बात का सकेत है ? संकेत यह है कि आप भी सिद्ध जैसे है लेकिन आप कर्म वन्धनो से बधे है इसीलिए आपअन्य की पुकार कर रहे है। लेकिन यह नय दृष्टि ही सब कुछ नही है, क्योकि यदि एकान्त दृष्टिकोण आगया तो भगवान के मार्ग से हम भटक जाएँगे । और यदि सापेक्षता को मद्देनजर रख कर इसको समझने का प्रयास करे तो यह सिद्धि जो अपने में रही है उसे सिद्धि के रूप मे प्रगट कर सकते हैं। शास्त्रीय दृष्टिकोण की इस उच्चतम स्थिति को समझने से पूर्व हम वर्तमान

जीवन की उन समस्याओ या प्रश्नो को हल करने का प्रयास करें जिनके कि विना हम उस स्वरूप को नही पहिचान सकते है। यदि इस प्रकार क्रमिक प्रयास करते रहे तो हम प्रार्थना के माध्यम से उस सिद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे या अपने आप मे प्रकट कर सकेंगे जिसकी याचना हम सिद्ध प्रभु से कर रहे है।

सोचिए समझिए और फिर करिए

मैं कुछ जीवन के स्वरूप को समझाने का प्रयास कर रहा हू। यह जीवन क्या है और जीवन की वह वास्तविक परिभाषा हमारे मन मस्तिष्क मे कैसे आए, हम कही जीवन के नाम पर अजीवन को तो जीवन नही समझ रहे हैं, हम कही आत्मा के नाम पर अनात्मा को तो आत्मा नही समझ वैठे हैं, भगवान के नाम पर अभगवान को तो भगवान नही समझ लिया गया है। इन बातो का ज्ञान आपको और हमको स्पष्ट रूप से कव होगा जव कि हम इसका चिन्तन ठीक तरह से करेंगे। जीवन की परिभाषा के साथ अपने वर्तमान जीवन को जानने की कोशिश करे क्योकि शास्त्रकारो ने मानव को उद्‌वोधन दिया है —"असखय जीविय मापमायए" यह जीवन असस्कारित है अत. प्रमाद मत कर और इस प्रमाद की स्थिति से ऊपर उठकर उसे इस जीवन का संस्कार करके जीवन के स्वरूप को समझने का प्रयास करना है।

उस जीवन की परिभाषा मे अनेक व्यक्तियो के लक्षण आपके सम्मुख आ सकते हैं। इन अनेको मे से वास्तविक लक्षण पहचानने का उत्तरदायित्व वुद्धिमान व्यक्ति पर आता है और वुद्धिमान व्यक्ति ही इन अनेको मे से एक का निर्णय करता है। उसी दृष्टि से जीवन की एक परिभाषा आपके सामने रखी जा रही है, उसमे भी आप थोड़ा ध्यान दें और परिभाषा को समझने का प्रयास करें।

इसमे कहा गया है कि सम्यक् निर्णायकम् समतामयं च यत् तज्

जीवनम्। इसमें सम्यक् निर्णायकम् शब्द पर थोड़ा गहरा सोचना है क्योंकि निर्णायक स्थिति यदि हमारे सामने स्पष्ट होती है तो हमें जीवन का वास्तविक प्रकाश उपलब्ध हो सकता है जिसकी हम प्रार्थना के माध्यम से याचना कर रहे थे। आज सम्यक् निर्णायक स्थिति के अभाव में मनुष्य इधर-उधर भटक रहा है। और खास कर आत्मा के स्वरूप के विषय में तो वह दिग्भ्रान्त सा हो रहा है क्योकि अलग-अलग दार्शनिक भिन्न-भिन्न रूप में आत्मस्वरूप को प्रस्तुत करते है। कोई-कोई सांख्यादि दार्शनिको का कहना है कि आत्मा कर्त्ता धर्त्ता कुछ नही है। आत्मा परिणामी नही है, आत्मा कूटस्थ नित्य है। एक शरीर की स्थिति मे रहने वाली है। ऐसी आत्मा सम्यक् निर्णायक है, ऐसे विचार जब सामने आते है तो उन पर कुछ चिन्तन आगे बढ़ता है कि यदि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है और कूटस्थ नित्य है तो फिर निर्णायक कैसे ? जो परिणामी नही होता वह निर्णायक नही हो सकता है आपके लिए ये शब्द कुछ अपरिचित से आ रहे है। आप कहेगे यह परिणामी क्या है ? परिणामी का अर्थ होता है परिणमनशील। परिणमन स्वभाव है। 'परिणमन से तात्पर्य है एक अवस्था की स्थिति से दूसरी अवस्था मे मुड़ना, लेकिन दूसरी अवस्था के अन्दर मुडने पर भी अपने स्वरूप को नही छोडना। जैसे स्वर्ण, सोने के रूप में है। सोना परिणामी है। क्योंकि स्वयं स्वर्णत्व के रूप मे होते हुए भी ढल सकता है, टूट सकता है, मुड़ सकता है, पिघल सकता है यानि आग के अन्दर द्रवित हो सकता है और दूसरे रूप मे ढल सकता है लेकिन ऐसी स्थिति में भी स्वर्णत्व रूप को नही छोडता। सोने की डली का आकार टूटा और लड़ी का वह आकार बना। उस डली को अग्नि का ताप लगा, वहुत ज्यादा ताप लगा और वह द्रवित हो गयी, यह डली में परिणमन हुआ इसको कहते है परिणाम। द्रवित होने के वाद फिर

उसको दूसरे साचे मे ढाल कर, तोड मरोड कर लडी बना दिया लेकिन उस लडी में भी स्वर्ण ज्यो का त्यो मिलता है। तो आप समझे होगे कि उस डली मे परिणाम होने का स्वभाव था पर अवस्था अन्तर होने पर भी, अर्थात् दूसरी-दूसरी अवस्था मे उसका परिवर्तन होने पर भी सोने का महत्व और सोने का स्वरूप कायम रहा। कहा तो डली और कहाँ लडी का आकार। आकार बिल्कुल नही मिल रहा है लेकिन स्वर्णपन मे कोई कमी नही आ रही है। यह परिणाम की स्थिति जैसे सोने में है उसी तरह से आत्मा मे समझी जायेगी तो आत्मा का सही स्वरूप समझ पायेंगे और यदि ऐसे परिणाम के स्वरूप को नही समझ पाये तो आप उस निर्णायक तत्व को नहीं समझ सकेंगे, क्योकि निर्णय करने का भी एक परिणाम है। आत्मा परिणमनशील है, वह परिणामी है, चैतन्यमय है।

दूसरा इसका विशेषण है कूटस्थ नित्यता जैसे—वज्र का खम्बा कभी मुडता नही है उसमे लचक के रूप मे परिणाम नही होता है उसे कहते हैं कूटस्थ नित्य। आत्मा ऐसी नही है कि जिसमे किसी तरह का परिणाम न हो। अगर ऐसा हो तो वह आत्मा नही रहेगी आप भले हो उसे आत्मा के नाम से पुकारें। लेकिन वह अनात्मा है।

बन्धुओ, इसको मैं थोडा गहराई के साथ कहने की सोच रहा हू मैं वैसे बहुत गहराई मे इस समय नही जाना चाहता लेकिन अपनी आदत के अनुसार मैं इस बारे मे कुछ कहना चाहूगा कि आप उस आत्म तत्त्व की गहराई को समझें।

केवल शरीर बदलता है।

आप सोचिये कि आत्मा एकान्त कूटस्थ नही परिणामी भी है क्योकि एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर मे जा सकती है, लेकिन

दूसरे शरीर मे जाने पर भी वह अपने स्वरूप को नही छोड़ देती है। एक मनुष्य की आत्मा प्रसग आने पर हाथी के शरीर मे भी जा सकती है। मनुष्य शरीर के आकार में जो आत्म प्रदेश व्याप्त थे, वे आत्मप्रदेश हाथी के लम्बे चौड़े शरीर मे पहुच गये, लेकिन हाथी के शरीर मे पहुचने पर भी जो आत्मा का लक्षण है जो आत्म प्रदेश मनुष्य की आत्मा के अन्दर थे, मनुष्य के पर्याय में थे वे वही है, उनमें कोई अन्तर नही आया तो परिणामी होते हुए भी आत्मा अपने स्वरूप के अन्दर दृढ है, अटल है। इसी को सत् तत्व की संज्ञा दी गई है। इसलिए शास्त्रकारो ने "उत्पात् व्यय ध्रोव्ययुक्त' सत्", यानी जिसके अन्दर उत्पात् अर्थात् उत्पन्न होना व्यय होना और ध्रुव या अटल रहना ये तीनों अवस्थाये हो वह सत् है, और जिसमें ये तीनो अवस्थायें एक साथ नही पाई जाती हैं वह तत्व सत् नही असत् है। उस दृष्टिकोण से आत्मा को भी तत्व माना गया है और आत्मा को निर्णायक माना गया है। जव आत्मा तत्व है और निर्णायक है और सत् है तो उसमें ये तीन अवस्थाये अवश्य माननी होगी। इन तीन अवस्थाओ को माने विना आप तत्व के निर्णय को पूरी तरह नही समझ पायेगे। इन तीन अवस्थाओ को मानेगे तो आत्मा को परिणामी स्वीकार करेंगे, और परिणामी स्वीकार करने पर ही आप सोच पायेंगे कि उसमे निर्णय करने का भी एक परिणाम है। कभी ऐसा भी विचार सामने आता है कि आत्मा तो कूटस्थ नित्य है यह परिणामी स्वभाव आत्मा का नही, प्रकृति का है, और प्रकृति सत्व रजस् और तमो तीन स्वभावात्मक है। जव तक इन तीनो की साम्यता रहती है तव तक सृष्टि का कोई कार्य नही होता है, लेकिन तीनो अवस्थाओं मे जव विकृति-विषमता आती है तो उसमे महद् तत्व पैदा होता है। उससे अहकार फिर तनू मात्रा आदि कुछ तत्वो की सृष्टि होकर प्रकृति सारे ससार की रचना कर लेती है और पुरुष के सामने अपना नत्य उपस्थित करती है। इसमे प्रकृति

के अन्दर बुद्धि भी मानी गई है वह प्रकृति का ही गुण है। उस बुद्धि में सफेदी है और उसमे आत्मा का प्रतिबिम्ब पडता है। प्रतिविम्ब पड़ने से आत्मा इस प्रकृति की सारी रचना को अपने आप समझ लेती है। और जव उसको यह खयाल हो जाता है कि यह सारा ससार एक प्रकृति का नाटक है और मैं इस कार्य से अलग हू ऐसा जव विवेक होता है तो वह प्रकृति से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार के विचारो की स्थिति के साथ युक्तियुक्त विचारो का चिन्तन किया जाय तो यह प्रश्न होता है कि प्रकृति के ऊपर पुरुष का प्रतिविम्ब कैसे पडा? समान प्रकृति का समान प्रकृति पर प्रतिविम्ब पड सकता है। काच मे जो मनुष्य का प्रतिविम्ब पडता है तो काच पुद्गलो से बना है। और मनुष्य का शरीर भी पौदगलिक है अत' उसमे प्रतिविम्ब पडता है। उस दपर्ण मे वर्ण, गध रस और स्पर्श होता है और जिसका प्रतिविम्ब पडता है वह भी वर्ण गध, रस और स्पर्श वाला होता है। दोनो समान धर्म वाले हैं इसलिए प्रतिविम्ब पडता है, लेकिन प्रकृति वर्ण, गन्ध और स्पर्श वाली मानी जाती है और आत्मा वर्ण,गन्ध और स्पर्श रहित मानी जाती है तो आत्मा का प्रतिविम्ब बुद्धि पर कैसे पड सकता है? रूपी का प्रतिविम्ब अरूपी पर नही पड़ता है। प्रतिविम्ब रूप का रूप पर ही पडता है, लेकिन इसलिए यह कथन कि बुद्धि के अन्दर आत्मा का प्रतिविम्ब पडता है और आत्मा मे भ्रान्ति पैदा होती है, यह युक्तिसगत नही है।

दूसरी वात यह है कि आत्मा यह सोचती है कि मेरा प्रतिबिम्ब इस पर पड रहा है और यह प्रकृति है, यह सोचने की स्थिति अगर उसमे आगई तो आत्मा परिणामी हो गई। फिर उसको कूटस्थ नित्य कैसे कहा जाय? यदि यह कहा जाता है कि आत्मा विवेक ख्याती से सोचती है, तो विवेक ख्याती परिणामी के विना नही होती है। पहले आत्मा भ्रान्ति के साथ थी फिर विवेक ख्याती मिली तो विवेक के कारण भ्रान्तिरहित हुआ इतने ही तो परिणामी स्वभाव

कहते है यदि इस परिणामी नित्य आत्मा को निर्णायक शक्ति के रूप मे लिया जाता है तो वह इस जीवन के साथ, आगे का मोड़ कर सकती है।

आप जिस शरीर के अन्दर बैठे हुए हैं, जिस परिणामी भाव को धारण करके यह आत्मा मनुष्य पर्याय मे बैठी हुई है इस पर्याय के वास्तविक सस्कारित स्वरूप को समझाने के लिए चरित्रवल का सहारा लिया जाता है ताकि चरित नायको के चरित्र के माध्यम से तत्वो को समझ सकें। मनुष्य जीवन का पर्याय तो हर आत्मा को मिला हुआ है पर जीवन की निर्णायक शक्ति को समझे बिना वह पर्याय अधूरा रह जाता है। एक तरुण के जीवन की स्थिति का एक चिन्तन मैं आपके सामने रखता हूं। एक तरुण जिसकी आत्मा आत्मिक गुणों से परिपूर्ण है और सही निर्णय कर पाने में सक्षम है। वह कविता के रूप मे इस प्रकार है—

निज गुण सुखकारी ध्याता है आत्मराम को

इस भरत क्षेत्र की दक्षिण दिशा में विख्यात मनिपिंगल नाम का एक देश है। उसमें विविध नगर हैं वे नगर शोभा से युक्त है। उसमें धनी मानी और विद्वान सभी तरह की जनता का आवास है। बस्तियां सभी तरह की वस्तुओ के व्यापार से, आदान-प्रदान से और सामाजिक व्यवस्था से वह देश सम्पन्न है। उस देश का नामकरण पोतनपुर के रूप मे है, उस देश के राजा जयशत्रु के रूप में विख्यात थे।

यह राजकीय जमाने का प्रसंग है, लेकिन राजाओ में भी सभी ऐशोआराम में लगे हुए थे ऐसी कल्पना नही करनी चाहिए। अधिकाश भाग विकृत हो सकता है, लेकिन उसमें कुछ शासक निर्लिप्त भी रह सकते है।

जो पोतनपुर के राज्य सिहासन पर आरूढ जयशत्रु महाराज थे वे प्रजा का पालन भी पुत्रवत् करते थे। वहा उनकी दृष्टि में



महासहिम आचार्य श्री नानालालजी म० सा०

के

चरण कमलो मे

सन्तवाणी
जीवन की
सच्ची निधि
है।
सच्चा मित्र
और मार्ग
दर्शक है!

संजय साहित्य संगम

(साहित्य प्रकाशन का विश्वसनीय प्रतिष्ठान)

दास बिल्डिंग नं० ५

बिलोचपुरा, आगरा-२

फोन ६१२६४

•

श्री प्रिंटर्स

(आधुनिक मुद्रणकला का आदर्श [illegible])

२६/१५४ राजामण्डी, आगरा-२

राज्य, सत्ता और सम्पत्ति ही सब कुछ नहीं थे लेकिन जनता का जीवन महत्वपूर्ण कैसे रह सके इसको ध्यान में रख करके जनता के जीवन के लिए वे सब तरह के उपाय काम में लेते और जनता के साथ स्नेह का व्यवहार करते, जनता के जीवन का विकास कैसे हो सकता है इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कार्य किया करते। यहां महाराजा का सैद्धान्तिक दृष्टि से संकेत किया है कि वे चरित्र बल से भी कैसे थे, क्योंकि शासक जितना चरित्र सम्पन्न होता है वैसे ही राष्ट्र-जनता भी अपने जीवन को वैसा ही चरित्र निष्ठ बनाने का प्रयास करती है।

यथा राजा तथा प्रजा

राजा का तात्पर्य आप शासक से लीजिए। चाहे वह मुकुट बन्द राजा हो या अन्य। वे राजा तो अब चले गए हैं लेकिन आज भी जो शासक हैं उन शासकों को आप राज्य को चलाने की स्थिति मे शासक के रूप में राजा मान सकते हैं। उनके चरित्र का प्रभाव जनता पर पड़ता है, उनका चरित्र यदि उन्नत है, वे यदि अपने चरित्र को देश भक्ति की दृष्टि से ठीक समझते हैं, उनको राष्ट्रीय चरित्र का ख्याल है तो उसका जनता पर भी असर होगा। और यदि शासक की स्थिति बिगड़ी हुई है, शासक व्यक्तिगत चरित्र से गिर गया है अथवा राष्ट्रीय चरित्र उनमें नहीं है अथवा शासकीय दृष्टि से तटस्थता नहीं है, तो वे शासक भले ही कुछ समय के लिए शासक बने रहे, उनके संस्कारों का असर जनता पर आए बिना नही रह सकता है। कभी-कभी ऐसे प्रसंग पर पूर्व स्थितियो का भी स्मरण हो आता है।

पूर्वकाल का एक शासक था उस शासक का वर्णन जब कभी कर्णगोचर होता है तो दिल के अन्दर अनुसंधान जुड़ जाता है। वह शासक शिकार खेलने की दृष्टि से जंगल में निकला और बहुत दूर

भटक गया। साथी पीछे छूट गए, शिकार भी नहीं मिला, हैरान हो गया। लौट करके पुनः राजधानी में पहुचना चाहता था लेकिन जोर से प्यास लगी हुई थी। बीच में एक किसान का खेत आ गया, वहा पर एक कुआ था। यह शिकारी के वेष में राजा उस किसान के कुए पर पहुचा, वहा एक बुढिया को देखता है। राजा को प्यास इतनी जोर से लग रही थी कि वह बोल नही पाया और हाथ से इशारा किया कि मुझे प्यास लग रही है, पानी पिलाओ। बुढिया समझ गई। उसने सोचा यह कोई बेचारा जगली दिखता है। यह कही शिकार खेलने के लिए गया है और हैरान होकर आया है लेकिन मेरे कुए पर आ गया, कुआ भी मेरा एक तरह का घर ही है और घर पर यदि कोई अतिथि आता है तो उसका सत्कार करना मेरा कर्त्तव्य बन जाता है। उसका सत्कार करने के लिए उस बुढिया ने एक गन्ना तोड़ा। साठे को खीच कर बाहर लाई वह वृद्धावस्था में भी इतनी ताकतवर थी कि उसने उस गन्ने को निचोड करके रस का लोटा भर दिया और उस राजा को रस पिलाया फिर पूछने लगी— बोलो भाई, अब भी क्या तुम्हारी प्यास अवशेष रही। तो राजा ने कहा माजी, मैंने मागा तो पानी था लेकिन तुमने रस पिला दिया तो भूख और प्यास दोनो गायब हो गई। बुढिया ने निस्वार्थ भावना से रस पिलाया और मानवीय दृष्टि से, वात्सल्य भावना से कहा कि भाई शिकारी—(वह बुढिया नही जानती थी कि यह राजा है)— तुम्हारा मैं क्या सत्कार कर सकती हू, तुम्हारा ही घर है, तुम अभी जाते हो तो जाओ लेकिन फिर कभी आना। राजा वहा से रवाना हो गया। रास्ते मे जाते जाते वह चिन्तन करता है कि मैंने जमीन का टेक्स बहुत कम लगा रखा है, ये किसान परिवार कितना कमा रहे है एक गन्ने के अन्दर ही इतना रस कि इतन सारा लोटा भर गया। कितना गुड़ और शक्कर तैयार कर रहे है। इन पर टैक्स अधिक लगाना चाहिए। राज्य मे जाकर उसने बहुत ज्यादा

टैक्स लगा दिया। जनता उस टैक्स को सुन कर सत्रस्त हुई और कुछ काल वीत गया। उसके वाद कुछ समय पश्चात सयोगवश वह राजा पुन उसी कुए पर जा निकला, फिर वही वुढिया उसको मिली उस वुढिया के सामने उसने पानी की फिर पुकार को उसने उसे पानी के वदले पुन रस पिलाने का प्रयास किया लेकिन अवकी वार एक से काम नही चला, तीन तीन गन्ने उखाडे और उनका रस निचोडा लेकिन तीन तीन गन्नो से भी लोटा पूरा नही भरा और उस रस को पीया तो भी उतना जायका नही रहा जितना कि पहले था। तव इस राजा के मन मे प्रश्न उठ खडा हुआ। वह पूछने लगा माजी, पहले मै आया था तव आपने एक ही साठे से लोटा भर दिया और वह रस कितना मिठासपूर्ण था लेकिन अव की वार तीन तीन साठो मे भी लोटा नही भरा और उसमे भी रस मे वह जायका नही है, क्या वात है ? उस वुढिया ने कहा, अरे भाई क्या वताऊँ—यथा राजा तथा प्रथा। राजा की नीयत खराव हो गई। जो हमारे ऊपर साधारण टैक्स था, राजा मे जनता के हित को भावना थी वह निकल गई और स्वार्थवश होकर इतना टैक्स लगा कर अपना भण्डार भर रहा है और अपने ऐशोआराम में लग रहा है लेकिन जनता का हित छोड दिया गया है, राजा की नीयत खराव हो गई है, इसका प्रभाव जनता पर पडा और जनता का प्रभाव इन पदार्थों पर पडा है जिससे गन्ने की स्थिति वह नही रही जो कि पहले थी। यह वात ऐसे सरल मालुम होती है लेकिन इसका मनोवैज्ञानिक तथ्य वहुत गहरा है। इन्सान की भावना का प्रभाव इन पदार्थो पर कैसे पडता है और कैसे इनके अन्दर इन रसो की कमी होती है। यह सारा विज्ञान यदि वारीकी से समझ मे आ जाय तो अतिशयोक्ति मालुम नही होगी। फिर वह राजा सारी वात समझ गया, और उसने टैक्स कम कर दिया और इस भावना से किया कि जनता का कल्याण हो।

यह रूपक किसी भी तरह से हुआ होगा, मै तो आपके सामने

इसलिए रख गया हूं राजा का असर प्रजा पर पड़े बिना नही रहता। जिस राज्य में कोई उत्तम पुरुष पैदा होता है उस राज्य में शासन की स्थित उत्तम होती है। तो जिस तरुण का और जिस राजा का वृत्तान्त आने वाला है उस राजा का जीवन कैसा था, इसका थोड़ा सा सकेत मात्र किया गया है कि वे कैसे थे उन्होने परस्त्री को माता समझी। पर स्त्री उनकी दृष्टि में कभी नही आई,अपनी जगत् साक्षी से बनी हुई उनकी स्त्री के अलावा कोई भी बहिन उपस्थित हुई तो उसको माता की निगाह से देखने की कोशिश-करते। जहां शासक के स्वयं के जीवन में इस प्रकार की चरित्र निष्ठा हो, उसके राष्ट्रीय चरित्र की प्रगति होती है। वे राज्य के शासक थे और उन पर सब तरह का उत्तरदायित्व था। वे अक्रांता नही बनना चाहते लेकिन यदि कोई अक्रांता बन कर आक्रमण करने की स्थिति में आता है तो वे पहले साम, दाम और भेद की नीति से समझाने का प्रयास करते यदि इनसे भी नही मानता तो दण्ड नीति का प्रयोग करना पड़े तो शत्रु को नाश करने की दृष्टि से नही अपितु आत्मरक्षा व राज्य की रक्षा के लिए और स्वय के आश्रित रहने वाले प्राणियो की सुरक्षा के लिए कार्य करते थे। तो वैसा प्रसग आने पर कभी शत्रु के सामने पीठ नही दिखाते, स्वय आगे बढ़ कर जाते। वे पास मे रहने वालो को या अपने पास के सिपाहियो और फौज को आगे बढाकर स्वय पीछे नही रहते, वल्कि स्वय सबके आगे रह कर लडाई के मैदान में उतरते थे। यह सारा विश्लेषण उनके व्यक्तित्व का, उनके चरित्रवल का इसमें कियागया है। उनका चरित्र बल कितना उन्नत था इसकी कल्पना सक्षेप में मनुष्य कर सकता है। लेकिन उस राज्य में राजा कितना भी चरित्र वाला हो और वह राष्ट्रीय चरित्र का स्वामी हो लेकिन यदि उसकी धर्मपत्नी उनके अनुरूप नही हो तो वहां की स्थिति डावाडोल हो सकती है। तो महाराजा के साथ मे रहने वाली महारानी का जिक्र भी आता है।

उनकी महारानी वसन्तसेना चौंसठ कलाओ मे निपुण थी। नारी जाति के जो श्रेष्ठ गुण हैं उन गुणो से वह अलकृत थी। उसके सौंदर्य की जो कवि की कल्पना थी उसके अनुसार इन्द्र की इन्द्राणी, अप्सरा स्त्री की तरह थी और उसके साथ ही साथ आध्यात्मिक जीवन के साथ धर्मवृत्ति का भी सकेत है कि वह अपने धर्म की दृष्टि से जिस रूप मे चलती थी, उस धर्म की स्थिति का उनके जीवन पर बहुत बडा प्रभाव था, उससे वह जनता की प्रिय बनी हुई थी, उनका जीवन स्व-पर हित दृष्टि से चल रहा था, महाराजा और महारानी का जो दाम्पत्य जीवन का प्रसग आता है, वह दाम्पत्य जीवन भी केवल भौतिक दृष्टि का ही नही अपितु आध्यात्मिक दृष्टि का भी प्रतीक था और उसी जीवन के अन्दर उन्होने जीवन के मर्म को समझने का प्रयास किया। महारानी के सम्पर्क से महाराजा अपने जीवन की स्थिति को आगे बढाने मे कैसे सफल रहे हैं। निर्णायक रूप मे एक इन्सान की जीवनी आने वाली है, वह आत्मा किस रूप मे आती है यह तो समय पर ही ज्ञात हो सकेगा। अभी तो मैंने इस चरित्र का प्रारम्भ करने से पहले थोडा सा सकेत दे दिया है कि शासक कैसे थे, महारानी और नागरिको की स्थिति क्या थी, इसका सक्षेप मे जिक्र कर दिया है, इसको आप ध्यान मे रखकर वर्तमान जीवन के साथ तुलना करें और उसके सम्बन्ध मे अपने जीवन को समझने का प्रयास करे तो आपका जीवन भी मगलमय होगा और निर्णायक शक्ति को समझने मे कामयाब हो सकेंगे। इसी भावना से अभी तो इस विषय को यही रख कर समाप्त किए देता हू।

लाल भवन
२८ जुलाई ७२



अज्झत्थहेउं निययस्स बंधो

—उत्तराध्ययन १४।१९

अन्दर के विकार ही वस्तुत. बधन के हेतु हैं। निर्विकार जीवन ही निर्मल होता है।

---

१० | निर्मल जीवन

विमल जिनेश्वर सेविये थारी बुद्धि निर्मल हो जाय रे जीवा।
विषय विकार विसार ने रे जीवा तूं मोहनीय कर्म खपाय रे जीवा॥

बन्धुओ,

यह विमलनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रभु के नाम भी कैसे कैसे आ रहे है। विमल शब्द, यह शब्द हर व्यक्ति के मन में एक विमलता की भावना उत्पन्न करने वाला है।

विगतः यस्य मल. स विमल।
अथवा विगतोमलो यस्मात् स विमलः॥

जिसमें से मल चला गया है वह विमल बन गया। गटर के पानी मे मैल मिला रहता है इसलिये वह पानी गन्दा रहता है। प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि यह पानी गन्दा है, विमल नही है, निर्मल नही है। लेकिन जहा हौज का स्वच्छ और निर्मल पानी है उसको निर्मल कह

सकते हैं। जड पदार्थ मे भी विमलता की स्थिति, जड रूप मे रहती है, पर यहा विमल का प्रसग चैतन्य तत्व से है। हमारी यह आत्मा अनादि काल से मलयुक्त बनी हुई है। एक जन्म से नही, अनन्तानन्त जन्मो से।

कब से यह मलयुक्त बनी, इसका कोई छोर नही है। पहले कभी भी यह आत्मा निर्मल नही थी क्योकि एक वक्त निर्मल बन जाने के बाद मे किंवा एक वक्त कर्मों के आवरण के सर्वथा हट जाने पर वह आत्मा पुन मलयुक्त नही बनती।

यह कल्पना करना कि पूर्व मे यह आत्मा मलरहित थी और बाद मे मलयुक्त बनी, असगत है। क्योकि अगर मल रहित होकर भी मलयुक्त बन सकती है तो फिर इस विश्व मे कोई भी आत्मा ऐसी नही रहेगी जो सदा सर्वदा के लिये मल रहित हो। फिर तो सिद्ध परमात्मा भी कर्ममल से युक्त बनने लगेगा। इसलिये शास्त्रकारो का कथन है कि यह आत्मा अनादि काल से कर्मो के मल से युक्त है, मोह और माया का जाल इसके साथ लगा हुआ है, छल और कपट के पटो मे आवारित है, स्वार्थो के घटाटोप मे यह आत्मा छिपी हुई है। इसने अनेक योनियो मे भ्रमण करते हुए आज तक पूर्ण रूप मे निर्मलता प्राप्त नही की।

जिन आत्माओ ने इस बीच मे अनादि काल के लगे हुए मल को धो दिया, मोह माया और ममत्व को सर्वथा नष्ट कर दिया और जिन्होने परम छोर की निर्मलता प्राप्त कर ली, वे विमलनाथ के रूप मे बन गए हैं।

जो आत्मा अनादिकाल से मलयुक्त है वह भी किसी न किसी समय मल रहित हो सकती है। मोटे तौर पर एकदेशीय उदाहरण के द्वारा आप इस विषय को समझ लीजिये। सोना है।

कहा रहता है यह ?

जमीन मे, मिट्टी मे।

सोना मिट्टी में दबा पड़ा है। वह सोना कब से मिट्टी में है, इसका कोई अन्दाज लगा सकता है ? अनादि काल से मिट्टी के साथ वह घुला मिला हुआ है। पर उस अनादि काल से मिट्टी के घुलने वाले को भी एक दिन मिट्टी से रहित किया जा सकता है। उसको भी निखालिस बनाया जा सकता है। वह कुन्दन बन सकता है।

इस एक देशीय उदाहरण से अनादि काल से मिट्टी के समान कर्मों के साथ आत्मा लिप्त हो रही है। पर प्रयत्न विशेष से इसको भी इस कर्म रूप मिट्टी से अलग करके निखालिस निर्मल बनाया जा सकता है। जीवन के ऐसे निर्मल प्रसग को जिन्होने उपस्थित किया वे विमलनाथ भगवान् कहे जाते हैं उन्ही के चरणों में आज प्रार्थना का प्रसग है।

विमल जिनेश्वर सेविये
तूं मोहनीय करम खपाय रे जीवा।

प्रार्थना की ये पंक्तिया सीधी सादी हैं और सम्बोधन भी बडा सुन्दर है। तू विषय विकारो को छोड़कर, विमलनाथ भगवान् की सेवा में यदि लग जाता है तो तेरे ये तमाम बन्धन टूट सकते हैं। लेकिन यह सोचने का विषय है कि विमलनाथ भगवान् के चरणों में लगेगा कौन ?

लगने वाले अपने आपको समझेंगे तब ही तो लगेंगे, जिसने अपनेआपको नहीं समझा वह कैसे विमलनाथ के चरणो में जाएगा ?

आप सब यहा व्याख्यान के स्थल पर उपस्थित हैं। आपको में कभी पूंछ लू कि आप कौन हैं ? बतलाओ !

आत्मा हैं।

आत्मा है ? तो आत्मा का स्वरूप क्या है ? आज उस आत्मा के स्वरूप को ही हमें ठीक समझना है। एक आध या कुछ व्यक्ति बता सकते हैं कि आत्मा है, पर मेरा प्रश्न कुछ व्यक्तियों से नहीं है,

कुछ व्यक्ति थोडे जानकार रहते हैं। कुछ और अधिक जानकारी रखते हैं। पर आम जनता का विषय अभी तक उस जानकारी से परे है और वे जब अपने आपकी स्थिति को पहचान नही पाते तो उनको निर्मलता का स्वरूप, विमलनाथ का स्वरूप कैसे समझ मे आ सकता है ? उस विमलता को प्राप्त करने के लिये हमें प्रयास करना है और इस प्रश्न को हल करना है कि जीवन क्या है ? उस जीवन की परिभाषा मे आये हुए शब्दो को और उसके भाव को समझना है। उन शब्दो को और उनके अर्थ को ठीक तरह से समझ लेगे तो हम अपने आपको भी पहचान लेंगे और जीवन की परिभाषा को भी व्यवस्थित रीति मे समझ लेंगे।

उसके लिये जो आपके सामने परिभाषा आ रही है कि—

"सम्यग् निर्णायक समतामय च यत् तज्जीवनम्।"

जो सम्यग् निर्णायक है समतामय है वह जीवन है। उस सम्यग् निर्णायक और समतामय की शक्ति को कभी आत्म रूप से पुकारा जाता है और कभी उसको निर्णायक रूप मे कहा जाता है।

लेकिन वह निर्णायक कैसे ?

मैं समझता हू—आत्म तत्व की मान्यता से शायद ही कोई इन्कार करे, लेकिन आत्मा का सही स्वरूप समझने मे अधिकाश भ्रान्तियुक्त हैं।

आत्मा मानी जा रही है पर कल मैंने बताया था कि आत्मा मानने वाले आत्मा को परिणामी नही मानते हैं तो वे वस्तुत आत्मा के स्वरूप को नहीं समझ रहे हैं, और एक दृष्टि से देखा जावे तो वे अन्धकार मे भटक रहे हैं, भ्रान्तियुक्त हैं। अन्धकार युक्त हैं, प्रकाश की किरणो से दूर हैं। जब उस आत्मा को परिणामी माना जावेगा तभी उसके साथ कर्तृत्व और भोक्तृत्व का सम्बन्ध जुडेगा।

एक स्वतंत्र तत्व "आत्मा"

आत्मा चैतन्यमय है। आत्मा परिणामी है। चैतन्यमय का तात्पर्य

आत्मा ज्ञानवान है और वह ज्ञान युक्त गुण भी ऊपर से चिपकाया हुआ नही है। वह आत्मा के साथ अभिन्न रूप से तदाकार रूप में रहता है। अगर ज्ञान अलग चीज है और आत्मा अलग चीज है और किसी पदार्थ से उन ज्ञान को आत्मा के साथ चिपका कर यदि कोई उसकी स्थिति को समझाता हो तो यह दृष्टिकोण भी असस्कारित मानस का है।

ज्ञान आत्मा के साथ अलग से लाकर चिपकाया नही जाता। ज्ञान तो आत्मा की शक्ति के रूप में है। आप सूर्य को देख रहे है। इस सूर्य की किरणे सूर्य के साथ किस सम्बन्ध से रही हुई है? किरणे अलग हैं और सूर्य अलग है क्या आप यह अनुभव कर रहे है? नही। तो क्या किसी दूसरे ठिकाने से किरणो को लाकर किसी चिपकाने वाले पदार्थ के द्वारा वे सूर्य के साथ चिपका दी गई है। अथवा वे किरणे सूर्य का रूप ही है? आप इस को समझ लेगे तो आगे की स्थिति भी स्पष्ट हो जावेगी।

सूर्य की किरणे सूर्य से अलग नही है। अगर अलग हो जावे तो कोई उसको सूर्य नही कहेगा। वह पिण्ड सूर्य नही कहलावेगा। सूर्य वह है जिसके अन्दर किरणे ओत-प्रोत है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से भिन्न नही और बाहर से लाकर चिपकाई भी नही जाती वैसेही ज्ञान शक्ति चैतन्य शक्ति आत्मा से भिन्न नही, आत्मा के साथ ही सूर्य की किरणो की तरह वह ओत-प्रोत है। उनको कथंचित् भिन्न भी कह सकते है और कथंचित् अभिन्न भी। यह तो स्याद्वाद् दृष्टिकोण है। पर आत्म-स्वरूप को समझने वाली सम्यग्दृष्टि आत्मा सबसे पहले आत्मा को चैतन्यमय माने और उसके साथ ही साथ दूसरा विशेषण इसका परिणामी माने। जो परिणामी है वह कर्त्ता भोक्ता की स्थिति मे आता है। जिसके अन्दर परिणाम नही है वह कर्त्ता भी नही हो सकता और न वह किसी चीज का भोक्ता हो सकता है। कर्त्तृत्व शक्ति और भोक्तृत्व शक्ति दोनो एक दृष्टि से आत्मा के स्वभाव गुण के अन्तर पेटे

मे है। क्योंकि आत्मा के अन्दर एक क्रियावती शक्ति मानी गई है, आत्मा क्रियावान् है। पर वह शक्ति आत्मा से ज्ञान की तरह अभिन्न है और उसके अन्दर जब क्रिया होती है तब इन्सान यह समझ पाता है कि यह काम मैंने किया है, और यह काम मैं करने वाला हू। यह प्रश्न तब समझ मे आता है जब कर्त्तृत्व शक्ति को आत्मा का गुण माना जाय और यह मानना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि इस विज्ञान को जाने बिना किसी प्रश्न का समाधान नही होगा।

आप यहा बैठे हैं, कहाँ से चल कर आये है? और वह आने वाला कौन है?

मेरे कुछ ऐसे ही प्रश्न होते हैं। क्योकि मैं एक दृष्टि मे आप से धर्म चर्चा करने के लिये बैठा हू। मैं उन वक्ताओं की दृष्टि से भाषणबाजी करने नही बैठा हू। मैं तो एक साधक के रूप मे हू और आपको भी साधक के रूप मे समझ कर चरचा करने के रूप मे कुछ बाते बतला रहा हू तो यह भी प्रश्न हो जाता है कि कौन चल कर आया है?

जड सहित आत्मा आई है।

अब देखिये कि जड सहित आत्मा क्या है। यह कर्त्तृत्व शक्ति आत्मा के साथ है और जड उसका विशेषण लग गया है। लेकिन यह ध्यान रखिये कि जिसमे निर्णय करने की शक्ति है और जिसमे रास्ते के मोड पर ठीक तरह से मुड जाने की विज्ञानशक्ति है, वह शक्ति जड की नही, यह शक्ति चैतन्य की है। जड अपने अन्दर क्रिया की योग्यता रखता है लेकिन वह क्रिया करने की स्थिति मे नही रहता। कर्तृत्व शक्ति उसमे नही रहती।

आत्मा रूपी भी है!

जो क्रिया होती है उसमे, और जो क्रिया की जाती है उसमे अन्तर है। एक ढेले का कण उडकर इधर से उधर पड रहा है, वह

क्रिया हो रही है। लेकिन एक व्यक्ति इधर से उठकर उधर बैठ रहा है वह क्रिया हो नही रही है **बल्कि यह क्रिया की जा रही है**। अपने घर से व्यक्ति चला, वह अपनी कर्तृत्व शक्ति के साथ शरीर को साथ में लेकर चला लेकिन शरीर वर्तमान की स्थिति मे आत्मा से ओत-प्रोत हो रहा है। लोह पिण्ड के अन्दर जैसे आग का प्रवेश है और उस लोह पिण्ड को आग के गोले के रूप में पुकारा जाता है वैसे ही यह आत्मा इस समय इस शरीर पिण्ड के साथ मे आग की तरह शरीर में ओतप्रोत हो रही है। तो जैसे उस लोह पिण्ड को आग युक्त होने से लोह पिण्ड न कह कर आग का गोला कहा जाता है वैसे ही वर्तमान में आत्मा को इस शरीर युक्त होने के कारण इस शरीर सहित आत्मा को आत्मा कहा जाता है। इस समय शरीर को हम सर्वथा जड़ नही कह सकते। हम उस सूत्र पर चिन्तन करे जो भगवती सूत्र में प्रश्न के रूप मे आया है :—

"आया भन्ते काया अन्ने काया ?

भगवन् ? आत्मा काया है या काया अन्य है ? तो भगवान ने उत्तर दिया "आयावि काया अन्नेवि काया।" आत्मा काया रूप भी है और अन्य रूप भी। इसी प्रकार आत्मा को रूपी आत्मा भी कह सकते है उसका भी प्रश्न वहा भगवती सूत्र मे आया है —

रूवी ए भन्ते आया अरूवी आया ?

हे भगवन आत्मा रूपी है या अरूपी ? तो उत्तर मिलता है :—

गोयमा ! रूवीवि आया अरूवी वि आया।

हे गौतम ? आत्मा रूपी भी है, और अरूपी भी है। रूपी आत्मा किस रूप में, जब तक कर्मों के साथ लिप्त है और शरीर का पिण्ड धारण करके चल रही है तब तक इसको रूपी आत्मा कहा जाता है और वह रूपी आत्मा चलती हैं चल कर अन्य स्थान पर पहुंचती है। आप जो आये है रूपी आत्मा के

रूप मे आये है। आपकी आत्मा वर्तमान मे रूप को लेकर चल रही है लेकिन उसमे चलकर आने का जो विज्ञान है और चलकर आने का जो कर्तृत्व है वह आत्मा का स्वभाव है, वह आत्मा का कर्तृत्व है न कि शरीर का। शरीर अगर आत्मा रहित हो जाता है तो उसमे कर्तृत्व शक्ति नही होती। एक मुर्दा कलेवर किसी घर मे पडा हुआ है और उसे आवाज देकर कहा जाये कि अरे भाई उठो महाराज के व्याख्यान का टाइम हो गया है हम व्याख्यान मे चले। क्या वह मुर्दा कलेवर आपके वाक्य को सुनेगा क्या वह उठकर चलने की तैयारी करेगा? वह कभी तैयारी करने वाला नही है क्योकि उसके अन्दर जो कर्तृव्य शक्तिमान् आत्मा थी, जो क्रिया करने का निर्णायक तत्व था वह तत्व उस शरीर को छोडकर अन्यत्र चला गया है। इसलिए मुर्दा शरीर इरादतन चलने की क्रिया नहीं कर सकता। लेकिन आप जो कि शरीर के साथ निर्णायक तत्व को लेकर बैठे है और किसी कार्य मे व्यस्त है, यदि कोई दलाल पुकारता है, दलाल भी कई तरह के होते है और धर्म के दलाल भी होते है तो धर्मदलाली करने वाले का भी स्वभाव होता है कि वह जाते-जाते पुकारता जाता है वह सोचता है कि मैं धर्म के लिए जा रहा हू तो चार व्यक्तियो को बुलाता हुआ क्यो न जाऊँ जिससे—मेरे कर्मो की भी निर्जरा हो और शुभ भावो के साथ मे दलाली भी कर लूँ और मुझे लाभ मिले और मेरे कहने से वह पहुच जाये तो उसको भी लाभ मिल जाये। इसलिये ऐसी भावना रखने वाला वह व्यक्तियों को पुकारता है कि बैठे क्या हो, यह संसार का काम तो रात और दिन चौबीसो घण्टे हो रहा है लेकिन चलो ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुछ आध्यात्मिक चर्चा ही सुनें, जीवन निर्माण की बातें सुने। इस प्रकार वह प्रेरणा करता है और उसकी प्रेरणा को सुनकर वह कितना ही अपने काम मे व्यस्त हो लेकिन वह इस निर्णय पर पहुचता है कि यह व्यक्ति ठीक कहता है, मुझे घण्टे भर का समय

निकाल लेना चाहिए। इस तरह वह निर्णय लेकर चल पड़ता है और जब चलता है तो रास्ते में बहुत ट्रैफिक है उस ट्रैफिक के बीच में,से होकर आता है लेकिन अपने आपको अखण्ड लेकर आता है, कही ऐक्सीडेन्ट नही होता, कही टकराव नही और लाल भवन मे प्रवेश करता हुआ सीधा नही आता, नीचे टेढ़ी-मेढ़ी नाल है लेकिन कही दीवार से टकराता है ? नही। चाहे अँधेरा क्यो न हो लेकिन एकाएक टकराता नही। तो बन्धुओ विचार यह करना है कि इस प्रकार कार्य करने की निर्णायक शक्ति किस में है ? वह जिसमें है वह आत्मा है और वह निर्णायक तत्व है। उस कर्तृत्व को हर हालत मे मानना पड़ेगा। और कोई इन्सान कहे कि आत्मा कर्ता धर्ता कुछ नही है, और यह जो कुछ होता है वह शरीर से होता है, यह बोल रही है तो यह जिह्वा बोल रही है और आत्मा तो कुछ नही बोलती। मैं कभी-कभी विचार करता हू कि कितने बचपने की सी बात है और कितनी असस्कारित बात है। आत्मा जब तक वैज्ञानिक शक्ति से बोलने का प्रयत्न नही करेगी तो बेचारी आत्मा रहित जिह्वा क्या समझती है कि मुझे क्या शब्द बोलने है। वह जिह्वा और मुह क्या समझता है कि वह कुछ खुल सके। वह कुछ नही समझता। उसमें बोलने वाली, चेतन्य कर्तृत्व शक्ति वाली आत्मा है इसलिए आत्मा के अन्दर कर्तृत्व गुण है। शरीर के माध्यम से जो खाना खाते है, यद्यपि खाना शरीर के अन्दर आ रहा है लेकिन खाने की जो व्यवस्थित क्रिया है वह आत्मा की है और खाने का कर्तृत्व भी आत्मा के साथ है। कोई विना आत्मा के कर्तृत्व के खा ले तो जहर सामने रख दो उसको वह जहर का ज्ञान कौन कराता है। यह खट्टा है, मीठा है। मुझे मीठा खाना है खट्टा नही, इस बात का विज्ञान कराने वाला कौन है ? क्या जिह्वा में ताकत है ? चैतन्य रहित जिह्वा कुछ भी ज्ञान की शक्ति नही रखती, इसलिए

जिह्वा के माध्यम से खट्टे और मीठे का जायका लेने वाली और कर्तृत्व भाग रखने वाली आत्मा है। आत्मा ही पहचानती है कि खट्टा है, यह मीठा है, यह मेरे स्वय के लिए हितप्रद है और यह अहितप्रद है। इस प्रकार आपने यदि चैतन्य निर्णायक को नही समझा और प्रवाह मे बहकर कह दिया कि नही साहब आत्मा तो शरीर के अन्दर रहती हुई कर्ता धर्ता कुछ नही है, जो कुछ करता है शरीर करता है—तो यह बहुत अन्धकार की बात होगी। यह अनादिकाल से चले आए अज्ञान की बात होगी। उसे वीतराग देव की वाणी नही कहा जाएगा इस प्रकार का प्रतिपादन निर्णायक स्वरूप को नही समझने का प्रतिफल है। इस जीवन के प्रश्न को हल नही करने का ही परिणाम है वह इस प्रकार सोचता है।

तो बन्धुओ मैं आपके सामने कर्तृत्व और भोक्तृत्व शक्ति की बात कह रहा था जो करता है वही भोक्ता है करने वाला और भोगने वाला एक है और वही अपने कर्मों का निर्माण करता है इसीलिए भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट उद्घोषणा की है कि

"अप्पा कत्ता विकत्ताय दुहाणाय सुहाणय्।

आत्मा ही अपने सुखदुख का कर्ता है। जो पाप कर्म का बन्धन करता है वह उसका प्रतिफल भोगता है और जो अच्छी प्रवृत्ति करता है वह धर्म के मार्ग पर चलकर निर्जरा करके आत्मशुद्धि करता है। इस दृष्टिकोण मे आपको और हमको ठीक तरह से चिन्तन करना है। यह मनुष्य जन्म बारबार मिलने वाला नही है। वर्तमान का जीवन केवल मशीन की तरह बरबाद करने का नही है। वर्तमान जीवन मे रहता हुआ आदमी अपने वर्तमान जीवन के स्वरूप को समझे। इसके साथ ही आगे का विश्लेषण आपके सामने आने वाला है वह मैं समय आने पर ही कहूगा।

उपादान और निमित्त

मैं यह कह रहा हू कि इस सिद्धान्त को मनुष्य समझ लेता है तो

अन्धकार से परे हो जाता है। जो यह समझते है कि हमारा किया क्या हो सकता है, जो कुछ होता है वह तो उसके अधीन है, दूसरा ही करने वाला है, कोई दूसरा ही नचाने वाला है और हम तो कठपुतली की तरह नाचने वाले है, हमारा किया कुछ नही होता। कभी-कभी तो हम यहा तक पहुंच जाते है कि यह सब कुछ कराने वाला भगवान है। कितनी बड़ी बात कह दी। भगवान कराने वाला है तो भगवान विमल है कि मल सहित है ? जो रागद्वेषरहित है वह यह सब कराता है तो ईश्वर इस आत्मा को रागद्वेष मे क्यो गिराता है। मलिन करने के लिए क्यो पाप कर्म करवाता है, क्यों नास्तिक कर्म करवाता है—ऐसे अनेक प्रश्न आकर सामने खडे हो जायेगे, जिनका कि समाधान नही हो पायेगा। और वस्तुतः जहां विचित्र ढग से सोचा जाता है वहा समाधान नही हो पाता है इसलिए वह ईश्वर तो सदा तटस्थ अपने स्वरूप के अन्दर तल्लीन है और वह विमल है। हमने उस विमलता का आदर्श सामने रखा, कर्तृत्व शक्ति को अपनी समझ कर अच्छा करते हैं तो उसका अच्छा फल भोगेगे और पाप कर्म करेंगे तो बुरा फल भोगेंगे क्योकि आत्मा मे कर्तृत्व शक्ति है। यह सब व्यक्तियो के साथ रही हुई है इस भावना को लेकर इन्सान को अपने जीवन का चिन्तन करना चाहिए और इसके साथ ही साथ यह भी चिन्तन करना चाहिए कि हम अपनी शक्ति के अनुसार अपना तो निर्माण करते ही है लेकिन साथ ही पडोसियो का निर्माण भी कर सकते हैं, कुछ सामाजिक संस्थाओं का भी निर्माण करने मे निमित्त बन सकते है। उसमे निमित्त के रूप मे भी कर्तृत्व हमारे सामने आ सकता है। जैसे कुम्भकार, घड़ा बनाता है। घडा बनाने के दो मुख्य कारण है एक तो उपादान और एक निमित्त। -पादान का तात्पर्य यह है कि जो कार्य रूप मे परिणत हो जाये। मिट्टी का ढेला मिट्टी के ढेले के स्वरूप को

छोड़कर घडे का रूप धारण कर लेता है इसलिए घडे का उपादान कार्य मिट्टी का ढेला है। लेकिन वह मिट्टी का ढेला स्वत घडे के रूप मे परिणत नही होता, उसमे योग्यता रहने पर भी योग्य कर्तृत्व के बिना, व्यवस्थित कर्ता के बिना, विज्ञानवान कर्ता के बिना वह मिट्टी का ढेला घड़े का सुन्दर रूप धारण नही कर सकता अत. वह कुम्भकार उसका निमित्त है, कर्त्ता है। निमित्त कर्ता कार्य का सम्पादन करके अपने आपको अलग रखता है, वह कार्य रूप मे परिणत नही होता उसमे व्यवस्थित विज्ञान की क्रिया होती है। कुम्भकार घडे का निर्माण करता है लेकिन घड़े को बनाकर, उसको सुन्दर आकार देकर अपने आपको वह सुरक्षित रखता है इसलिए कुम्भकार को निमित्तकर्ता माना गया। कर्ता दोनो आ रहे हैं।

किन्तु निमित्त कर्ता के बिना भी घडा नही बनता और उपादान शक्ति के बिना भी नही बनता। दोनो का समन्वय होता है तभी घडा बनता है। पर फिर भी निमित्त और उपादान दोनो ही सब कुछ नही हैं। इसमे सहकारी कारण सामग्री भी रही हुई है। कुम्भकार कितना ही कलाकार और चतुर हो पर उसके पास अगर चाक न हो, उस चाक को घुमाने वाली डडी न हो और वहा उस घडे को घडने की प्रक्रिया के अन्य साधन न हो तो कुम्भकार भी घडे का निर्माण नही कर सकता और इसलिए उपादान और निमित्त के साथ सम्पूर्ण सहकारी कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है। उपादान शक्ति प्रत्येक आत्मा मे है और निमित्त शक्ति सन्तजन, माता-पिता आदि के रूप मे आती है। सन्तो के चरणो मे बैठकर मानव अपनी उपादान शक्ति का उपयोग करके अपनी आत्मा को उनके निमित्त से ऊपर उठा सकता है और उसमे कुछ प्रगति कर सकता है, पर साथ ही सम्पूर्ण कार्य कारण सामग्री का होना भी आवश्यक है, तभी वह अपनी प्रगति के सभी साधन जुटा सकता है।

इनमें से एक की भी कमी रह जावे तो लक्ष्य प्राप्ति मे अधूरापन रह सकता है। वाधा आ सकती है।

मैं अभी इस विषय को अधिक गहराई मे नही ले जा रहा हूं। कभी प्रसग आ गया तो खुलकर चर्चा करने का विचार है। यहां तो कुछ थोडी सी वस्तुओं का विवेचन करके आगे चलना चाहता हू।

सन्त जन-समुदाय के लिये निमित्त कर्ता वनकर जीवन निर्माण की स्थिति का कार्य करते है, चरित्र निर्माण की भावना उत्पन्न करते है, उपादान शक्ति को भी विकसित करने का शक्ति भर प्रयास करते है और उनके निमित्त रूप मे उपस्थित होकर कार्य कर पाते है। वैसे ही सन्तो के अभाव में जो परिवार के मुखिया है उन पर परिवार के निर्माण का दायित्व है सन्तान की स्थिति को सुसन्तान के रूप में परिणत करने में निमित्त कारण उनके परिवार के अन्दर रहने वाले सदस्य अथवा परिवार का मुखिया बनता है। आप दृष्टान्त रूप में समझिये कि घर के अन्दर रहने वाली माता अपनी सन्तान को सुसस्कारित बनाने मे कुम्भकार की तरह निमित्त कर्ता बन सकती है। लेकिन किसकी ?

सन्तान की।

पर सन्तान कैसी हो। उस घर में जन्म लेने वाला पुत्र सुशील हो, चारित्र सम्पन्न हो और वह अपने जीवन को सुन्दर तरीके से निर्माण करने वाला साबित हो इस भावना से यदि माता या पिता अपनी स्थिति से कुछ कार्य करे तो सन्तान का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं और यदि माता-पिता लापरवाह रहे तो यह काम किसी सीमा तक नही हो पावेगा। सन्तान को जन्म दे देना एक वात है पर उसको पढा लिखाकर सुन्दर तरीके से उसका जीवन निर्माण कर देना दूसरी वात है।

मैं आपके सामने जो एक विशिष्ट पुरुष का चरित्र रखना चाह रहा हू उस विशिष्ट पुरुप के जीवन का निमाण करने वाला कौन

था ? यद्यपि उपादान शक्ति जो आत्मा मे थी, पर निमित्त के रूप मे माता पिता भी कैसे मिले इसका रूपक थोडा दिया जा रहा है—

मन के विचार और स्वप्न

कल महाराज और महारानी का वर्णन कर गया था वहा वसन्तसेना नाम की महारानी, राजा की महारानी ही नही, जीवन की भी महारानी थी। जो जीवन की महारानी हो उसकी अलौकिकता कुछ और ही होती है। जो अपने जीवन मे उतम सस्कारो का सग्रह करती है जो अपने जीवन को सुन्दर तरीके से आध्यात्मिक जीवन के साथ जोडती है, जिन्होने सुन्दर तरीके मे निर्णय लिया है और जो यह सोचते है कि मेरे जीवन से जितनो का भला हो सकता हो मुझे करना चाहिये। मेरा जीवन इस दुनिया के सामने आदर्श रूप मे रहे। मैं नारी जाति मे रहती हुई भी नारी जाति की शिरोमणि भूषण के रूप मे स्थापित होऊ इस प्रकार की भावना जिस महाराणी मे जागृत हुई वह वस्तुत इस ससार के लिए बहुत बडी सौभाग्यशाली है। ससार की शोभा बढाने वाली है। महारानी वसन्तसेना जीवन मे वैसे ही सस्कारो को लेकर चलती थी वह धर्मकरणी मे तल्लीन रहती थी। २४ घटो मे कुछ घटे धर्म कार्यो मे लगाया करती थी। पास पडोस वाली बहिनो को बुलाकर धार्मिक सस्कार देने मे पीछे नही रहती थी। नैतिक जीवन के निर्माण करने मे जितना योगदान करती थी इसका वर्णन कथा के प्रसग मे कर रहा थोडा हूँ। पर सक्षेप मे सोचिये कि वह महलो मे रहने वाली और वैभव मे पलने वाली रानी भी अपने पास-पडोस को और गावो मे रहने वाली महिलाओ अन्य व्यक्तियो को भी प्रभावित कर रही थी। उसकी इस उदार वृत्ति के कारण वह महारानी बडी दयालु है उसका धार्मिक जीवन जन-जन के सम्पर्क मे किस प्रकार आ रहा है। वह सारा उनका जो भाग्य विधाता के रूप मे [illegible]

कर रही है। जन-जन के मुँह से शब्द निकल रहे थे।

वह पवित्र जीवन लेकर चलने वाली महारानी। उसे स्वप्नो का अधिक प्रसग नही आता। शान्ति के साथ जीवन यापन करती है। अधिक कार्य में भी व्यवस्थित रूप से चल रही है। एक दिन को बात है वह शय्या पर सोई हुई थी। उसने एक दिव्य स्वप्न देखा। उस स्वप्न में देखा कि एक दिव्य सरोवर जिसमें निर्मल पानी भरा हुआ है उसमें और भी बहुत से कमल खिलकर महक रहे हैं। कमलो के अन्दर से सुन्दर पराग बिखर रहा है और चारों ओर सुगन्धि फैल रही है। तो उसने रात्रि को इस प्रकार का स्वप्न देखा। महारानी स्वप्न को देखते हो जगी और सोचने लगी कि मुझे सहसा कोई स्वप्न नही आता, लेकिन आज जो अचानक स्वप्न बना है यह किसी न किसो बात की सूचना देने वाला है और मुझे इस स्वप्न का सुन्दर तरीके से चिन्तन करना है। जिन भाई और बहिनों को बहुत स्वप्न आते है जिनकी कि गिनती नही रहती उनके स्वप्न सार्थक नही होते। प्राय· वे सब मानसिक कल्पनाओ के रूप में होते है। उनके स्वप्नो की स्थिति सामान्य पदार्थो की बनती है।

वैसे स्वप्न की धारा मानसिक विचारो के साथ है। मन के अन्दर जो कुछ देखकर सस्कार डाले गये है और जिन पदार्थों को ग्रहण करना चाहते है उनकी पूर्ति नही हुई, और उनकी चिन्ता लेकर सो गये तो रात्रि मे उसी का स्वप्न देखने में आ जावेगा। अथवा वह कही से कुछ सुन लेता है कुछ देख लेता है, या सूंघ लेता है कुछ चख लेता है या कुछ स्पर्श कर लेता है या अनुभव करता है तो उसका भी मिला जुला स्वप्न बन जाता है और उसी मे रातभर भ्रमण करता रहेगा और जिनका दिल इतने तुच्छ स्वार्थों में तल्लीन होता है उनको तो दिन में बैठे बैठे ही स्वप्न आ जाया करते हैं।

सन्त लोग कभी-कभी कुछ बोल दिया करते है और मैंने भी एक बात इसी तरह की सुनी है। एक श्रावक जी सामायिक मे बैठे

थे और व्याख्यान श्रवण कर रहे थे। व्याख्यान श्रवण करते-करते उनको नींद आ गई। धर्मस्थान में यह होना स्वाभाविक भी है क्योंकि दिन भर दिमाग थका हुआ रहता है उसे यहां विश्रान्ति मिलती है।

या तो कोई मन को आह्लादित करने वाला विषय होता है, या मनोरंजन का विषय होता है तो थोडा सावधान हो जाते हैं नहीं तो फिर सुस्ती आ जाती है या नींद आती है। कुछ देर तक तो सुनते हैं लेकिन फिर मस्तिष्क थक जाता है तो विश्राति लेने की स्थिति बनती है। तो वह भाई साहब रात दिन स्वार्थ के अन्दर तल्लीन रहकर दुकान से उठकर आये ही थे और सामायिक के अन्दर बैठे थे और बैठे बैठे उन्होंने स्वप्न देख लिया उसी तन्द्रा में। स्वप्न देखते देखते यह झट से अपनी मुख वस्त्रिका को लेकर फाड़ते हैं और कहते हैं कि लो लो ले जाओ ४ आने में ले जाओ। यह क्या था ? स्वप्न में उन्होंने देखा कि ग्राहक आया है इन्होंने अधिक पैसा, ८ आना मांगा और ग्राहक ने कहा कि मैं तो ४ आने ही दूंगा और उसी स्वप्न में निर्णय लिया कि ले जा ४ आने में ही ले जा। इस तरह वह मुंह पत्ती को उठाकर फाड़कर उसके हाथ में दे देता है। जब वह जागता है तो सोचता है। निद्रा भंग हुई तो देखा कि मैं तो व्याख्यान में बैठा हूं और स्वप्न में व्यापार कर रहा हूं। तो इसप्रकार के स्वप्न जिसको आते हैं उनका मन विमल नहीं होता, मलयुक्त होता है आत्मा के अन्दर ऐसी स्थिति बनती है लेकिन जिन व्यक्तियों की मलरहित स्थिति बनती है वे या तो ऐसे स्वप्न नहीं देखते और देखते भी हैं तो उनका कुछ न कुछ फल अवश्य होता है।

महारानी को रात्रि के अन्दर जो स्वप्न आया उसको देखकर वह विचार करने लगी :

इस सुन्दर स्वप्न में कमलों से भरा हुआ सरोवर देखकर महारानी हर्ष विभोर हो गयी, और बैठकर चिन्तन करने लगी। ऐसा

जो भव्य स्वप्न आया है यह मुझे आज क्या संकेत दे रहा है, कौन सी बात का फल देने वाला है ? वह चिन्तन करने लगी कि जो उत्तम स्वप्न आते है, वे कुछ न कुछ लाभदायक होते है। इस भावना से महारानी बिविध कल्पना करने लगी और अनुमान लगाया कि सम्भव है कि मुझे ऐसा स्वप्न आया तो मेरी कोख मे कोई उत्तम पुरुष आ सकता है, क्योकि जब कभी उत्तम पुरुष के आने का प्रसंग आता है तो ऐसा स्वप्न आता है। इस प्रकार महारानी भी स्वप्न का चिन्तन करके कुछ अनुमान लगा पाई। लेकिन यह सोचा कि जो मुझे स्वप्न आया है इसका मे स्वयं ही निर्णय न करके अपने प्राणनाथ जो मेरे पतिदेव है उनके सामने भी इसका वर्णन करूँ और उनके मुखार्विन्दु से भी इस स्वप्न का अर्थ समझूँ। इसी भावना को लेकर : उसने सोचा मेरे पतिदेव की शैया पास के कमरे मे है। मै पतिदेव के चरणो में पहुचकर इस स्वप्न का सारा वृतान्त उनसे कहूं। प्राचीन काल के अन्दर रहने वाले मनुष्यो की एक आचार सहिता होती थी। गृहस्थ अवस्था में रहने वाले जो पुरुष अपने जीवन को चरित्रनिष्ठा के साथ रखना चाहते है वे विषय वासना के कीड़े नही होते। उनका शयन कक्ष भी अलग-अलग होता था। पति के सोने का कमरा अलग और पत्नि के सोने का कमरा अलग। वे उस दृष्टि से दोनो विभक्त थे। जब वह वहाँ से उठी और पतिदेव के कमरे मे योग्य समय पर पहुँची जिस समय कि पति की निद्रा प्रायः समाप्त हो चुकी थी, कुछ थोड़ा सा आलस्य अवश्य था। जैसे ही इसके पैरो की आहट हुई तो महाराजा जाग गये। आख खोलकर देखते है तो महारानी जी नजदीक खडी है, कहा, महारानी अभी इस समय आपका यहा आगमन कैसे ? नाथ ! आज मै आपके सामने कुछ प्रश्न लेकर उपस्थित हुई हू। कहा, कौन सा प्रश्न है ? झट मे उनको समीप मे सिहासन दिया। महारानी बैठी और

बैठने के बाद महाराजा पूछने लगे ऐसा कौन सा प्रश्न है आप रखिये आपके प्रश्न का समाधान मैं यथाशक्ति करूँगा। देखिये दाम्पत्य जीवन का पारस्परिक सहयोग। जीवन मे कोई समस्या उत्पन्न होजाये तो एक दूसरे के सामने रखने से उनका समाधान हो सकता है। महारानी ने अपना सारा वृतान्त कह सुनाया कि रात्रि के समय इस प्रकार का मुझे स्वप्न आया व महाराजा उस स्वप्न के वृतान्त को सुनकर :—

"हर्षित होकर वे भी बोले सुनकर प्रिये इस बार,
कुल भूषण कुल दीपक हों पुत्र रत्न हितकार।
निज

महाराजा भी स्वप्नशास्त्र के कुछ ज्ञाता थे और उन्होने महारानी के सारे वृतान्त को सुनकर महारानी की दिनचर्या के अनुपात मे उन्होने कल्पना की कि महारानी जैसा तुम्हारा चरित्र सम्पन्न जीवन है और तुम्हारी जितनी कोमल भावना है और जिस प्रकार तुम परोपकार के अन्दर तल्लीन हो रही हो उससे ऐसा आभास होता है कि तुम्हारी कुक्षि मे कोई न कोई पुत्र रत्न की प्राप्ति होने वाली है। यह सरोवर का स्वप्न और उसके साथ ऐसे कमल खिले हुए और उनमे सुगन्धि आ रही थी मानो यह तुम्हारे पुत्र प्राप्ति की पहले से सूचना है। सरोवर कैसा गम्भीर होता है, उस सरोवर के अन्दर कोई पत्थर फेंकता है तो उसके वदले पानी उछलता है, पत्थर के वदले मे पत्थर नही आता है इसी तरह से तुम्हारी कुक्षि के अन्दर से ऐसा पुरुष आने वाला है जो दुनिया मे सरोवर की तरह गम्भीर वन कर पत्थर फेंकने वाले पर भी वदले मे पानी का छींटा देने वाला होगा, पत्थर के वदले पत्थर फेंकने वाला नही होगा। जैसे पानी सवके प्राणो का रक्षक है और पानी से ही दुनिया का जीवन ठीक तरह से व्यवस्थित है उसी तरह से तुम्हारे पुत्र रत्न के आधार पर दुनियां का जीवन सुव्यवस्थित हो

सकता है। जैसे सरोवर के अन्दर कमल खिले हुए थे उसी तरह से तुम्हारे पुत्र के जीवन में आन्तरिक कमल खिलेंगे, उससे गुणों की सुगन्धि फैलेगी। उन्होने कहा कि मैंने जितना श्रवण कर रखा है जितनी शिक्षा पाई है उतनी आपके सामने रख रहा हूँ। आपने स्वप्न देखने के बाद निद्रा ली या नही ?"

नाथ ? मैंने तो कुछ भी निद्रा नही ली। उसी समय मैं धर्म चिन्तन में बैठ गई।

"बहुत अच्छा।" उत्तम स्वप्न के बाद निद्रा नही लेनी चाहिए। नही तो, उसका फल मारा जाता है। तुमने उत्तम स्वप्न आने के बाद मन मे बुरा सकल्प तो नही किया ?

नही नाथ, इनता तो मै जानती हू फिर खोटा सकल्प क्यो करती। मै भी कुछ अनुमान लगा रही थी। पर अब आपके चरणों को पाकर धन्य हो गई। आपने इसका अर्थ विस्तार से बतलाया है। आपकी सभी बातो को मैं हृदयगम करती हूं और विश्वास करके अपने जीवन की स्थिति को शान्त रखने का विचार करती हू।

"महारानी, तुम्हारी कुक्षी से जन्म लेने वाला कुल भूषण होगा, कुल की शोभा बढाने वाला होगा। यद्यपि पुत्र में उपादान शक्ति तो अपनी है पर निमित्त कर्ता के रूप मे तुम बनोगी अतः तुम्हारा जीवन जितना निर्मल होगा उतनी ही गर्भस्थित तुम्हारी सन्तान निर्मलता की तरफ बढती जावेगी इसलिए तुम यह प्रयास करो कि तुम्हारा जीवन निर्मल से निर्मलतर बनता जावे और उस प्रयास के द्वारा तुम अपनी सन्तान के जीवन को भी सुसस्कारित बना सको।

इस चारित्र भाग से हमें भी कुछ सोचना है। इसीविषय की पूर्ति के लिए विमलनाथ की प्रार्थना चल रही है—

विमल जिनेश्वर सेविये

आप इसके आधार पर अपने जीवन के कर्तव्यो को समझकर अपनी क्रियात्मक उपादान और निमित्त शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे तो हमारा जीवन धीरे धीरे निर्मलता की तरफ बढता जावेगा। इस निर्मलता की तरफ बढते हुए आप भी विमलनाथ की तरह बन सकते है।

लाल भवन

२६ जुलाई ७२

